। श्रीचैतन्यचन्द्राय नमः ।

❋ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ❋

परमाभिवन्दनीय श्रीगौर-पार्षद श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचित

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

प्रथम-द्वितीय शतक

हिन्दी-अनुवाद सहित



सङ्कलनकर्ता—

श्रीश्यामदास



प्रकाशक—

श्रीहरिनाम प्रेम संकीर्त्तन-मण्डल,

श्रीधाम वृन्दावन ।



प्रकाशक—

श्रीश्यामलाल हकीम
श्रीहरिनाम प्रेम सङ्कीर्त्तन-मण्डल
श्रीधाम वृन्दावन।

तृतीय प्रकाशन
द्वितीय संस्करण—१०००
बसन्त पञ्चमी—वि० सम्वत् २०१८ — श्रीचैतन्याब्द ४७६
न्यौछावर ॥=)

मुद्रक—
लाला छाजूराम रानीलावाले
श्रीसर्वेश्वर प्रेस, श्रीनिकुञ्ज,
प्रताप बाजार—वृन्दावन

प्राक्कथन !

★

उपासक की उपासना अपने उपास्य के नाम, रूप, गुण-लीला एवं धाम—इन चारों स्वरूपछबि को हृदय में धारण करने से सुसम्पन्न होती है। किन्तु नाम, रूप, गुण-लीला—इन तीनों का सर्वातिशायी माधुर्य धाम में ही स्फुरित होता है। अतः उपासना कार्य में धाम का मुख्य स्थान है। सर्वाराध्य परमब्रह्म स्वयं भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दन के नाम-रूप-गुण-लीला-धाम वर्णन-प्रधान अनेकों ग्रन्थरत्न स्वभावसिद्ध परमोदार वैष्णवाचार्यपादों ने साधक-समाज के लिये सङ्कलित किये हैं। उनमें परमधाम स्वरूप-वर्णनप्रधान एक अनिर्वचनीय, अमूल्य ग्रन्थरत्न यह—**श्रीवृन्दावन-महिमामृत** है। इसमें दिव्य चिद्घनस्वरूप, महामाधुर्यसार परम-धाम श्रीवृन्दावन की आश्चर्यमय स्वरूपमाधुरी तथा अगाध महिमामाधुरी के आस्वादन के साथ साथ श्रीश्रीयुगलकिशोर की असमोर्द्ध उन्नतोज्ज्वल रसमयी दिव्य दिव्य अनेक लीलाओं की अपूर्व झाँकी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ—**श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्** के रचयिता भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के प्रियपार्षद परमाभिवन्दनीय परि-व्राजकाचार्य-मुकुटमणि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद हैं। जिनका

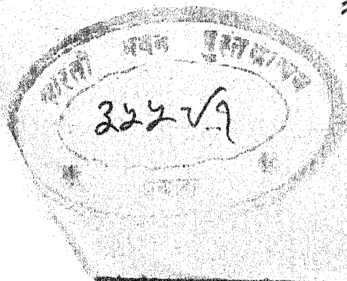
जीवन-चरित्र 'श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्' (तृतीय-चतुर्थ शतक) के प्रथक् सङ्कलन में प्रकाशित हो चुका है—पाठकों के लिये द्रष्टव्य है। सरस्वतीपाद ने और भी अनेक अनिर्वचनीय ग्रन्थों की रचना की है, जो वैष्णव-जगत् में प्रसिद्ध एवं प्रचलित हैं। उन्होंने एक सौ शतकों में 'श्रीवृन्दावन-महिमामृत' ग्रन्थ की रचना की। दुर्भाग्यवश जिसमें से केवल सत्रह शतक प्राप्त हुए हैं। उनमें से—एक से दश शतक तक हिन्दी-अनुवाद सहित श्रीमन् महाप्रभु की कृपा से प्रकाशित हो चुके हैं। शेष के सात शतक प्रकाशित हो रहे हैं जो अति शीघ्र पाठकों के करकमलों में समर्पण किये जाएँगे।

वैष्णव-साहित्यानुरागी रसज्ञ पाठकगण! इन अपूर्व रचनाओं से भजनाङ्ग सम्बन्धी यत्किञ्चित यदि लाभ उठासकें तो दीन-हीन सम्पादक कृतार्थ हो जायगा।

वसन्तपञ्चमी
सं० २०१८


भक्तपद-रज-प्रार्थी
श्रीश्यामलाल हकीम
श्रीवृन्दावन।





। श्रीचैतन्यचन्द्राय नमः ।

* श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः *

श्रीवृन्दावन-महिमामृतं

प्रथमं शतकम्

[१]

श्रीराधा-मुरलीमनोहर पदाम्भोजं सदा भावयन्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोः पदरजः स्वात्मानमेवार्पयन् ।
श्रीमद्भागवतोत्तमान् गुणनिधीनत्यादरादानमन्
श्रीवृन्दावन दिव्यवैभवमहं स्तोतुं मुदा प्रारभे ॥

श्रीराधा तथा श्रीमुरलीमनोहर के चरणारविन्दों का निरन्तर ध्यान-स्मरण करता हुआ, श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की चरण-रज में आत्म-समर्पण कर एवं कल्याण-गुणसागर भक्तशिरोमणिवृन्द के चरणकमलों में अतिशय आदर सहित बारम्बार प्रणाम कर आनन्दपूर्वक मैं श्रीवृन्दावन के दिव्य (चिन्मय) वैभव की स्तुति करने में प्रवृत्त होता हूँ ।

[२]

ईशोऽपि यस्य महिमामृत वारिराशेः
पारं प्रयातुमनलम्बत तत्र केऽन्ये ।
किन्त्वल्पमप्यहमति प्रणयाद् विगाह्य
स्यां धन्य धन्य इति मे समुपक्रमोऽयम् ॥

जिस श्रीवृन्दावन के महिमामृत-समुद्र के पा-
स्वयं ईश्वर भी असमर्थ हैं—तो फिर इस काम के

कौन साहस कर सकता है ? किन्तु अत्यन्त प्रीतिपूर्वक मैं इस समुद्र में यत्किञ्चित अवगाहन कर भी धन्य धन्य हो जाऊँगा—इसलिये ही मेरी यह चेष्टा है ।

[३]

श्रीमद्वृन्दाटवि ! मम हृदि स्फोरयात्म स्वरूप-
मत्याश्चर्यं प्रकृतिपरमानन्द विद्यारहस्यम् ।
पूर्णब्रह्मामृतमपि ह्रिया वाऽभिधातुं न नेति
ब्रूते यत्रोपनिषदइहात्रत्य वार्त्ता कुतस्त्या ॥

हे श्रीमद्वृन्दाटवि ! अति आश्चर्यजनक स्वाभाविक परमानन्द-विद्या-रहस्ययुक्त जो आपका स्वरूप है, उसकी मेरे हृदय में स्फूर्ति कराओ। पूर्णब्रह्मामृत के ही वर्णन करने में लज्जित होकर जब उपनिषद् "नेति नेति" पुकार रहे हैं, तब इस श्रीवृन्दावन की महिमा विषय में और क्या कहा जाये ?

[४]

राधाकृष्ण विलासपूर्ण सुचमत्कारं महामाधुरी
सारस्फार चमत्कृति हरिरसोत्कर्षस्य काष्ठा पराम् ।
दिव्यं स्वाद्यरसैक रम्य सुभगाशेषं न शेषादिभिः
सेशैर्गम्यगुणौघपारमनिशं संस्तोमि वृन्दावनम् ॥

जो स्थान श्रीराधाकृष्ण के विलास-सौभाग्य से पूर्ण चमत्कारित्व-जनक है, जो स्थान महामाधुर्य का सार होने के कारण अतीव विस्मयकर है, जो स्थान श्रीहरि के शृङ्गार-रस की पराकाष्ठा का प्रतिपादक है, अप्राकृत एवं आस्वादनीय मुख्य उज्ज्वल रस के अशेष सौभाग्य से गौरवान्वित है, (अथवा उन्नत उज्ज्वलरस के द्वारा ही जो अशेषभाव से एकमात्र रमणीय एवं सौभाग्य-मण्डित है), ईश्वर सहित

शेषादि देवतागण पर्यन्त जिसकी गुणराशि का वर्णन करते हुए पार नहीं पा सकते, ऐसे श्रीवृन्दावन की मैं निशिदिन सम्यक् प्रकार से स्तुति करता हूं।

[५]

प्रेमौत्क्येन विचिन्त्यतां विलुठनैः सर्वाङ्गमायोज्यतां
देहस्यास्य समर्पणेन सुदृढ़प्रेमा समास्थीयताम्।
राधाजानिरुपास्यतां स्थिरचरप्राणीह सन्तोष्यतां
श्रीवृन्दावनमेव सर्वपरमं सर्वात्मनाश्रीयताम् ॥

प्रेमोत्कण्ठा से (श्रीवृन्दावन की) चिन्ता कर, विलुण्ठन के लिये सर्वाङ्गों का नियोग कर, इस (भौतिक) देह को समर्पण कर सुदृढ़ प्रेम के समाश्रित हो, श्रीराधा-नागर की उपासना कर, श्रीधाम के स्थावर-जङ्गम प्राणिमात्र को सन्तुष्ट कर,—इसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ श्रीवृन्दावन का ही कायमनोवाक्य से आश्रय ग्रहण कर।

[६]

वेदान्ताः प्रतिपादयन्ति मुखतो नोचेत्ततः किं मम
मन्यन्ते वत शास्त्रगर्त्तपतिता दुस्तर्किणः किं ततः।
नो चेद् भागवतानुभूतिपदवीं यात स्ततः किं मम
स्वात्मा वज्रसहस्रविद्ध इव न स्पन्देत वृन्दाबनात् ॥

श्रीवृन्दाबन की महिमा वेदान्त-समूह मुख से (मुख्यवृत्ति से) प्रतिपादन न करें तो मेरा क्या? शास्त्ररूप गर्त्त में गिरे हुए कुतार्किकगण यदि श्रीवृन्दावन का सम्मान न करें, तो इससे मेरी हानि क्या? एवं इस श्रीधाम का माहात्म्य भगवद्-भक्तों के अनुभव-गोचर न हो, तो भी मेरा क्या? किन्तु मेरा शरीर सहस्र वज्रों के द्वारा छेदित-भेदित सा

होकर भी श्रीवृन्दावन से अन्यत्र किञ्चित्‌मात्र भी चालित न हो।

[७]

प्रोदञ्चत्पिकपञ्चमं प्रविलसद् वंशीसुसङ्गीतकं
शाखाखण्ड-शिखण्डि-ताण्डव कलं प्रल्लासिवल्लीद्रुमम् ।
आजन्मञ्जु निकुञ्जकं खगकुलैश्चित्रं विचित्रं मृगै
र्नानादिव्यसरःसरिद् गिरवरं ध्यायामि वृन्दावनम् ॥

जिस धाम में कोकिलाएँ उदात (ऊंची) पञ्चम स्वर में आलाप करती हैं, वंशी की सुमोहन तान के साथ जिस स्थल पर सुमधुर सङ्गीत श्रुतिगोचर होता है, जिस धाम के प्रति वृक्ष की शाखाओं पर मयूरों की ताण्डव-नृत्य सहित अस्फुट मधुर ध्वनि होती है, जहाँ के लता एवं वृक्ष समूह (फल फूलों से) उल्लसित हो रहे हैं, जो धाम मञ्जुल निकुञ्जों से सुशोभित है जहां नाना प्रकार के बिहङ्ग-कुल एवं पशु विहरते हैं, तथा नानाविधि दिव्य सरोवर एवं नदियाँ पर्वता-कीर्ण हैं—ऐसे श्रीवृन्दावन धाम का मैं ध्यान करता हूँ।

[८]

स्थूलं सूक्ष्मं कारणं ब्रह्मतुर्यं श्रीवैकुण्ठ द्वारका जन्मभूमिः ।
कृष्णस्याथो गोष्ठवृन्दावनन्तत् गोप्याक्रीड़ं धाम वृन्दावनान्तः ॥

स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं तुरीय ब्रह्म, श्रीवैकुण्ठ, द्वारका, जन्मभूमि (मथुरा-गोकुल) श्रीकृष्ण की गोचारण स्थली श्रीवृन्दावन, एवं श्रीमृन्दाबन मध्यवर्त्ती गोपियों की क्रीड़ा-भूमि (ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं) ॥८॥

[९]

अत्याश्चर्या सर्वतोऽस्माद् विचित्रा श्रीमद्राधा कुञ्जवाटी चकास्ति ।
आद्याभावो यो विशुद्धोऽति पूर्णस्तद्रूपा सा तादृशोन्मादि सर्वाः ॥

अतिशय आश्चर्यजनक एवं परिदृश्यमान जगत् से अतीव सुन्दर श्रीराधाजी की कुञ्जवाटी सुशोभित है। विशुद्ध तथा पूर्णतम जो आद्य—(शृङ्गाराख्य) भाव है, श्रीराधाजी की कुञ्जवाटी तत्स्वरूपा है एवं उसका समस्त (उपकरण) उस भाव की भाँति उन्मादना ही उत्पन्न करने वाला है।

[१०]

तत्रै वाविर्भवद्रूपशोभा वैदग्ध्यान्योऽन्यातुरागाद्भुतौघौ।
नित्याभङ्ग प्रोन्मदानङ्गरङ्गौ राधाकृष्णौ खेलतः स्वालिजुष्टौ ॥

उस स्थान पर रूप शोभा-वैदग्धी तथा पारस्परिक अनुराग के अद्भुत सागर का एवं नित्य तथा भङ्ग रहित उन्मादनकारी अनङ्ग-रङ्ग का आविर्भाव कर श्रीराधाकृष्ण अपनी सखियों के सहित मिलकर लीला करते हैं।

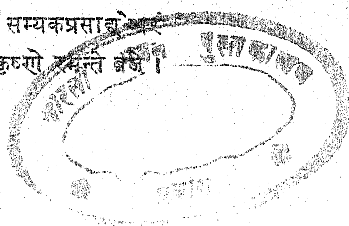
[११ [

अत्युत्कृष्टे सकलविधया श्रीलवृन्दाबनेऽस्मिन्
दोषान् दृष्टान्निजहतदृशा वास्तवान् ये वदन्ति।
तादृक मूढ़ा हरि हरि ! ममप्राणबावेऽप्यदृश्याः
संभाव्या वा कथमपि नहि प्राय सर्वस्वहास्याः ॥

सर्वभाव से अति उत्कृष्ट इस श्रीवृन्दावन में निज दुर्भाग्यवश दृढ़ दोषों को जो लोग सत्य मान कर वर्णन करते हैं, अहो ! उन मूर्ख लोगों के मैं प्राण सङ्कट आने पर भी दर्शन नहीं करूंगा। किसी भी विषय में क्यों न हो क्या वे सब के सामने उपहास्याश्पद न होकर रह सकते हैं ?

[१२]

ब्रह्मानन्दमवाप्य तीव्रतपसा सम्यकप्रसाद्...
गोरूपाः सकला इहोपनिषदः कृष्णे रमन्ते ब्रजे।



वृन्दारण्यतृणं तु दिव्य रसदं नित्यं चरन्त्योऽनिशं
राधाकृष्णपादाम्बुजोत्तम रसास्वादेन पूर्णाः स्थितः ॥

उपनिषद् समूह (वेद) ब्रह्मानन्द को प्राप्त होकर भी, तीव्र-तपस्या द्वारा ईश्वर की सम्यक्रूप से आराधना कर इस श्रीकृष्ण के ब्रजमें धेनुरूप धारण करके आनन्द लाभ करते हैं। वे दिव्य रसदानकारी श्रीवृन्दावन के तृण भक्षण कर निशिदिन नित्य श्री राधाकृष्ण के चरण कमलों के उत्तम रसास्वादन से परिपूर्ण (तृप्त) होकर अवस्थान करते हैं।

[१३]

श्रीवृन्दावनवासिनि स्थिरचरे दोषान् मम श्रावयेद्
योऽसौ किं शतधा छिनत्ति नहि मां शस्त्रैरथास्त्रैः शितैः ।
सर्वाधीशितुरेव जीवनवने द्वेषञ्चमात्रं चरेद्
एकस्यापि तृणस्य घोरनरकात्तं कः कदा वोद्धरेत् ॥

श्रीवृन्दावन वासी स्थावर जङ्गम में दोष हैं—ऐसा जो कोई मुझे सुनाता है, वह क्या शाणित (तेज किये हुए) अस्त्र द्वारा मेरे सैंकड़ों टूक नहीं करता है ? सर्वाधीश्वर प्राण समान प्रिय वृन्दावन के एक तृण के प्रति भी जो स्वल्प द्वेषाचरण करता है, उसका फिर घोर नरक से कभी कोई उद्धार करेगा ?

[१४]

श्रीवृन्दारण्य शोभामृतलहरीः समालोकतो विह्वला मे
दृष्टि र्वा भातु वृन्दावनमहिम-सुधा-वारिधौ मज्जताद्धीः ।
श्रीवृन्दारण्यभूमौ लुठतु मम तनु र्विह्वलानन्दपूरैः
श्रीवृन्दारण्यसत्त्वेष्वहह तत इतो दण्डवन्मे नतिः स्यात् ॥

श्रीवृन्दारण्य की शोभामृत तरङ्गों का अवलोकन करते करते मेरे लोचन विह्वल हों, श्रीवृन्दावन के महिमा-सुधा-समुद्र में मेरी बुद्धि मज्जन करे। सान्द्रानन्द प्रवाह में विभोर होकर मेरा शरीर श्रीवृन्दावन की भूमि पर लुण्ठन करे। अहो ! श्री वृन्दावनवासी सर्व जीवों के चरणों में जिस से इतस्ततः दण्डवत प्रणाम कर सकूं।

[१५]

यत्र क्रीड़न्ति कृष्ण-प्रिय-सखि सुबलाद्यद्भुताभीरबाला
मोदन्ते यत्र राधा-रतिमय ललिताद्युज्ज्वल श्रीकिशोर्यः।
आश्चर्यानङ्गरङ्गे रहह ! निशिदिवा खेलनासक्त राधा-
कृष्णौ रत्येकतृष्णौ मम समुदयतां श्रीलवृन्दावनं तत् ॥

जहां श्रीकृष्ण के प्रिय सखा सुबलादि अद्भुत २ गोप-बालक क्रीड़ा करते हैं, जहाँ श्रीराधा प्रति रतिशालिनी ललितादि उज्ज्वल-रस विशिष्टा श्रीकिशोरीवृन्द आनन्दित हो रही हैं, दिन रात आश्चर्य अनङ्ग-रङ्ग में खेलनपरायण रति में ही एक मात्र तृष्णा-युक्त श्रीराधाकृष्ण उसी श्रीवृन्दावन को मेरे हृदय में सुप्रकाशित करें।

[१६]

स्वच्छं स्वच्छन्दमेवास्त्यतिमधुर-रसनिर्झरादम्बु पातुं
भोक्तुं स्वादूनि कामं सकलतरुतले शीर्णपर्णानि सन्ति।
कामं निःशीतवातं विमलगिरिगुहाद्यस्ति निर्भाति वस्तुं
श्रीवृन्दारण्यमेतत्तदपि यदि जिहासामि हा हा हतोऽस्मि ॥

स्वच्छन्द पान करने के लिये स्रोतों का स्वच्छ एवं अति मधुर-रस-विशिष्ट जल है, यथेच्छ भोजन के लिये समस्त वृक्षों के नीचे सुस्वादु शीर्ण (सूखे) पत्र विद्यमान हैं, यथेष्ट

उष्ण एवं निर्वात विमल गिरिगुफाएं हैं—यह श्रीवृन्दावन सर्वथा वास करने के उपयोगी प्रतीत होता है तथापि हाय ! यदि इसे त्याग करूं, तो मैं अत्यन्त मन्द भाग्य हूँ।

[१७]

महाप्रेमाम्भोधे र्यदनुपमसारं यदमलं
हरिप्रेमाम्भोधेः मधुर मधुरं द्वीपवलयम् ।
मुनीन्द्राणां वृन्दैः कलितरस वृन्दावनमहो !
तदेतद् हान्तावधि समधिवासं दिशतु मे ॥

महाप्रेम-समुद्र की जो अनुपम विमल सार वस्तु है: जो श्रीहरि के प्रेमसागर का अति मधुर द्वीप-भूषण सदृश है एवं जो श्रेष्ठमुनिगणों द्वारा आस्वादित रस-समूह का आधार स्वरूप है—वह श्रीवृन्दावन मृत्युकाल पर्य्यन्त मुझे सम्यक् प्रकार से आश्रय दान करे।

[१८]

वापीकूपतड़ाग कोटिभिरहो दिव्यामृताभिर्युतं
दिव्योद्यत्फल-पुष्पवाटिक मनन्ताश्चर्यवल्लीद्रुमम् ।
दिव्यानन्तपतन्मृगं वनभुवां शोभाभिरत्यद्भुतं
दिव्यानेक निकुञ्जमञ्जुलतरं ध्यायामि वृन्दावनम् ॥

दिव्य-जल से पूर्ण कोटि कोटि सरोवर, कूप एवं तडागों से जो युक्त है, दिव्य दिव्य फल एवं पुष्प-वाटिकाओं से जो मण्डित है, अनन्त चमत्कारी वृक्ष-लताओं से जो समाकीर्ण है, जहां असंख्य दिव्य दिव्य पशु इधर-उधर धावमान हैं, जो बनभूमि की विचित्र शोभा से समुद्भासित है एवं जो अगणित दिव्य मनोहर निकुञ्जपुञ्ज से परिशोभित है—ऐसे श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूँ।

[१९]

श्रीराधिका मदनमोहन केलिकुञ्जपुञ्जैर्वृ तद्रुनलता घन रत्नभूमि ।
आनन्दमत्त मृग-पक्षीकुलाकुलं श्रीवृन्दावनं हरति कस्य हठान्न चेतः ॥

श्रीराधामदनमनोहर के केलिकुञ्ज समूह से आकीर्ण, घन-घन वृक्षलताओं से परिवेष्टित रत्नभूमियुक्त एवं आनन्दमत्त पशु-पक्षियों से आकुलित, यह श्रीवृन्दावन बलात्कारपूर्वक किस का चित्त हरण नहीं करता ?

[२०]

कस्यापि दिव्य रति मन्मथकोटिरूप धामद्वयस्य कनकासित रत्नभासम् ।
अत्यद्भुतै मंदनकेलिविलासवृन्दै र्वृन्दावनं मधुरिमाम्बुधि मग्नमीक्षे ॥

किसी दिव्य कोटि-कोटि रति-कामदेव रूपविशिष्ट (अनिर्वचनीय) विग्रहयुगल की (श्रीराधाकृष्ण की) स्वर्ण-नील-ज्योति से उद्भासित, अतीव अद्भुत काम-केलि-विलासादि के माधुर्य-सागर में निमग्न श्रीवृन्दावन के दर्शनों की मैं इच्छा करता हूं ।

[२१]

गाढ़ासक्तिमतामपीह विषयेष्वत्यन्त निर्वेदतो
दृक्पातेऽप्यसहिष्णुतातिशयिनां योगे समुद्योगिनाम् ।
ब्रह्मानन्दरसैकलीन मनसां गोविन्द पादाम्बुज-
द्वन्द्वाविष्ट धियां च मोहनमिदं वृन्दावनं स्वैर्गुणैः ॥

इस संसार के विषयों में गाढ़ आसक्तियुक्त पुरुषों के मन को, परम वैराग्य के कारण जो पुरुष इन विषयों पर दृष्टिपात करने में ही अत्यन्त असहिष्णु हैं—उनके मन को, योग—मार्ग में सम्यक् प्रकार उद्योगीजनों के मन को, केवल मात्र ब्रह्मानन्दरस में मग्नचित्त व्यक्तियों के मन को, और फिर

श्रीगोविन्द चरणारविन्द में आविष्ट-चित्त भक्तवृन्दों के भी मन को यह श्रीवृन्दावन अपने गुणसमूह से मोहित किये रखता है।

[२२]

चिरादुपनिषद्गिरामति विचार्य तात्पर्यकं
न लब्धुमिह शक्यते यदनुमाधुरीमप्यहो।
तमप्यनुभवेन्महारसनिधिं यदावासत
स्तदेव परमं मम स्फुरतु-धाम-वृन्दावनम् ॥

चिरकालपर्यन्त उपनिषत् के वाक्यों के तात्पर्य का बिचार करने पर भी हाय ! अणुमात्र भी जिस माधुरी की प्राप्ति नहीं हो सकती, परन्तु श्रीवृन्दावन में वास करने से ही उसी माधुरी के समुद्र का आस्वादन मिलता है; ऐसा सर्वोत्कृष्ट श्रीधाम वृन्दावन मेरे चित्त में स्फुरित हो।

[२३]

सोढ्वा पादप्रहारानपि च शतशतं धिक्कृतीनाञ्च कोटीः
क्षुत्तृटशीतादि बाधा शतमपि सततं धैर्यमालम्ब्य सोढ्वा।
मुञ्चन शोकाश्रुधारा मतिकरुणगिरा राधिकाकृष्णनामा-
न्युद्गायन् काहं वृन्दावनमतिविकलोऽकिञ्चनः सञ्चरामि ॥

शत-शत पाद प्रहारों को एवं कोटि कोटि धिक्कारों को भी सहन करता हुआ, धैर्यपूर्वक निरन्तर क्षुधा, तृष्णा तथा शीत ग्रीष्मादि के सैकढ़ों विघ्न-बाधाओं को अतिक्रम करके भी मैं कब शोकाश्रुधारा प्रवाहित करते करते श्रीराधिका कृष्ण की नामावली को अत्यन्त करुण ध्वनि से उच्चस्वर में गान करता हुआ अति व्याकुल चित्त से अकिञ्चन होकर श्रीवृन्दावन में इधर इधर विचरण करूंगा ?।

[२४]

अद्य श्वो वा यास्यतीदं कुदेहं सर्वे भोगा यान्ति तत्र स्थितेऽपि ।
तस्मात् सौख्याभास उच्चैर्विभाति नित्यानन्दे नन्द वृन्दावनान्तः ॥

आज किंवा कल ही इस कुत्सित देह का पात होगा, और शरीर रहते हुए भी शीघ्र ही समस्त भोग समाप्त हो जायेंगे। अतएव यह स्पष्ट हो प्रतीत होता है कि पार्थिव वस्तुओं में सुख का आभासमात्र है। इसलिये नित्यानन्ददायी श्रीवृन्दावन में ही आनन्द लाभ कर।

[२५ [

किं नो भूपैः किं नु देवादिभिर्वा स्वाप्नैश्वर्योत्फुल्लितैः किञ्च मुक्तैः ।
शून्यालम्बै वैष्णवैर्वापि किं नः श्रीमद्वृन्दाकाननैकान्त भाजाम् ॥

एकान्तभाव से श्रीवृन्दावनाश्रयी हमारा राजाओं से क्या प्रयोजन ? देवताओं से क्या ग़रज़ ? और स्वाप्न ऐश्वर्य तुल्य ऐश्वर्य के द्वारा उत्फुल्लित मुक्तगणों से हमारा क्या प्रयोजन ? अन्य शून्यावलम्बी (परव्योम वैकुण्ठादि की प्राप्ति ही जिनका लक्ष है) वैष्णवों से ही हमारा क्या आवश्यक ?

[२६]

शं सर्वेषामप्रयासेन दात्री द्वि त्रैकान्ति प्रेममात्रैकपात्री ।
आनन्दात्मा शेषसत्त्वा निधात्री श्रीवृन्दाटव्यस्तु मेऽन्धस्यधात्री ॥

अनायास में सबका सुख विधान करने वाली, दो तीन (इने-गिने) एकान्ती जनों की ही केवल प्रेम-पात्र एवं निखिल जीवों को आनन्द स्वरूप प्रदान करने वाली–ऐसी जो श्रीवृन्दाटवी, वही मुझ जैसे अन्ध पुरुष की पालन करने वाली हो।

[२७]

वेणुं यत्र कणयति मुदा नीपमूलावलम्बी
सम्वीत श्रीकनकवसनः शीतकालिन्दीतीरे ।
पश्यन् राधावदनकमलं कोऽपि दिव्यः किशोरः
श्यामः कामप्रकृतिरिह मे प्रेम वृन्दावनेऽस्तु ॥

शीतल श्रीयमुना के तीर पर कदम्ब वृक्ष के मूल का अवलम्बन लिये हुए सुन्दर पीताम्बरधारी, श्यामवर्ण काम-प्रकृति-विशिष्ट कोई एक दिव्य किशोर श्रीराधा मुख-कमल दर्शन करते २ जहाँ आनन्दपूर्वक वेणु बजाता है, उसी श्रीवृन्दावन में मेरी प्रीति हो ।

[२८]

स्तैः किं नः परमपरमानन्द-साम्राज्यभोगैः
किंवा योगैः परपदकृतैः किं परैर्वाभियोगैः ।
वासेनैव प्रसभमखिलानन्द सारातिसारं
वृन्दारण्ये मधुर-मुरली-नाद माकर्णयिष्ये ॥

अतीव परमानन्द देने वाले उन समस्त साम्राज्य भोगों से हमें क्या ? स्वर्गादि की प्राप्ति के लिये योग समूह से क्या लाभ ? अन्यान्य विषयों में अभिनिवेश करने से क्या फल ? क्योंकि श्रीवृन्दावन में वास करने से तो निखिल आनन्द का परम-सार मधुर मुरली निनाद हठात् कानों में प्रवेश करेगा ।

[२९]

श्री वस्त्राभरणादिभिः करपदाद्युत्कर्त्तदाहादिभिः
निन्दा संस्तव कोटिभिर्बहुविभुत्यत्यन्त दैन्यादिभिः ।
जीवन्नेव मृतो यथा न विकृतिं प्राप्तः कथञ्चित् क्वचित्
श्रीवृन्दावनमाश्रये प्रियमहानन्दैककन्दं परम् ॥

उत्तम उत्तम वस्त्र-भूषणादि की प्राप्ति में अथवा कर-पादादि के काटे या जलाये जाने पर, कोटि-कोटि निन्दा अथवा प्रशंसा होने पर, एवं बहु सम्पत्ति किंवा दीनता प्राप्त होने पर भी जीवन्मृत की तरह कभी भी किसी प्रकार से विकार को प्राप्त न होकर परमप्रिय महानन्द-बीजस्वरूप इस श्रीवृन्दावन का आश्रय करता हूं।

[३०]

दुखान्येव सुखानिविद्धचपयशो जानीहि कीर्त्ति परां
मन्येथा अधमैश्च दुष्परिभवान् सम्मानवत् सत्तमैः।
दैन्यान्येव महाविभूतिमतिसल्लाभानलाभान् सदा
पापान्येव च पुण्यमन्ति यदि ते वृन्दावनं जीवनम् ॥

यदि श्रीवृन्दावन में तेरा जीवन हो, तो दुखों को तू सुखसमूह जान, अपयश को परमा-कीर्ति मान, अधमपुरुषों के द्वारा अत्यन्त अपमानित होने पर उसे भी तू साधुपुरुषों के द्वारा किये हुए सन्मानवत् जान, दरिद्रता-राशि को महा-विभूतिस्वरूप, अत्युत्तम (मायिक) लाभों को महाक्षति-स्वरूप एवं पापसमूह को पुण्यरूप प्रतीत कर।

[३१]

त्यक्त्वा सङ्गं दूरतः स्त्रीपिशाच्या सर्वाशानां मूलमुद्धृत्य सम्यक्।
दैवाल्लब्धेनैव निर्वाह्य देहं श्रीमद्वृन्दाकानने जोषमासस्व ॥

स्त्री-पिशाची का सङ्ग दूर से त्याग कर, समस्त वासनाओं को सम्यक प्रकार से मूल से उच्छेद कर एवं दैवलब्ध-वस्तु द्वारा देह-यात्रा का निर्वाह करते हुए श्रीवृन्दावन में प्रीतिपूर्वक वास कर।

[३२]

न कुरु न वदकिञ्चिद् विस्मराशेषदृश्यं
स्मर मिथुनमहस्तद्गौरनीलं स्मरार्त्तम् ।
बहुजन समवायाद्दूरमुद्विज्य याहि
प्रिय निवसतु दिव्यश्रीलवृन्दावनान्तः ॥

तुम्हारे लिये कर्तव्य और वक्तव्य कुछ भी नहीं है, दृश्यमान समस्त वस्तुओं को भूल जा, कामातुर उस गौर-नील जोड़ी को स्मरण कर, जिस स्थान पर लोकों का समूह हो, उस स्थान से उद्विग्न-चित्त होकर दूर चला जा; हे प्रिय ! अप्राकृत श्रीमद्वृन्दावन में वास कर।

[३३]

करनिहितकपोलो नित्यमश्रूणि मुञ्चन्
परिहृतजनसङ्गोऽरोचमानानुयानः ।
प्रतिपद बहुलार्त्या राधिकाकृष्णदास्ये
वसति परमधन्यः कोऽपि वृन्दावनेऽस्मिन् ॥

नित्य कपोलदेश पर हाथ रखे हुए अश्रु प्रवाह करते करते निसङ्ग होकर एवं सेवक-अनुचर रहित होकर प्रतिक्षण व्याकुलतापूर्वक जो श्रीराधाकृष्ण के दास्य-रस में निमग्न होकर इस श्रीवृन्दावन में वास करता है, वही परम धन्य है।

[३४]

असुलभमिहलोके लब्धुमिच्छस्ययत्नात्
यदि विपुलधन स्त्री-पुत्र-गेहोत्तमादि ।
करनिपतितमुक्ति कृष्णभक्तिञ्च काङ्क्ष-
स्यधिवस परधामैवाद्य वृन्दावनाख्यम् ॥

यदि तू दुर्ल्लभ विपुल-धन, स्त्री, पुत्र, उत्तमोत्तम गृहादि इस संसार में अनायास (बिना यत्न) प्राप्त करना चाहता है, करनिपतित (हाथ में धरी हुई) मुक्ति, कृष्णभक्ति (एवं प्रेम) की प्राप्ति के लिए भी यदि तेरी आकांक्षा है, तो आज ही से तू श्रीवृन्दावन नामक परमधाम में वास कर।

[३५]

वृन्दाटवी नहि कवीश्वर काव्यकोटिसम्भाव्यमान गुणरत्नगणच्छटैका।
एतामपार रसखानिमशेषखानि संरुध्यमित्रमतिमध्यवसीय याहि॥

श्रेष्ठ कविगण कोटि कोटि काव्य-रचना के द्वारा भी श्रीवृन्दावन के गुणरत्न-समूह की एकमात्र छटा का भी वर्णन नहीं कर सकते। हे मित्र! निखिल इन्द्रियों की वृत्तियों का निरोध कर इस अपाररस-खानिरूप वृन्दाटवी के लिये स्थिर-मति होकर प्रस्थान कर।

[३६]

वृन्दाटवी जयति कामगवी-सुरद्रू चिन्तामणीनगणितानपि तुच्छयन्ती।
श्रीशङ्करद्रुहिणमुख्य सुरेन्द्रवृन्ददुर्ज्ञेयदिव्यमहिमैक रजःकणेन॥

लक्ष्मी, शङ्कर, ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ सुरगण जिसकी अप्राकृत महिमा को कदापि नहीं जान सकते, एक रज-कण के द्वारा ही जो अगणित कामधेनु, कल्पवृक्ष एवं चिन्तामणि के समूह को भी तुच्छ करती है—उस श्रीवृन्दाटवी की जय हो।

[३७]

वृन्दाटवी यदि रवीन्दुहुताश विद्युत्
कोटिप्रभा-विभवकारी महाप्रभाढ्या।
आत्मप्रभा सकृदपि प्रतिभाति चित्ते
वित्तैषणादि नहि तस्य मनस्युदेति॥

कोटि कोटि सूर्य, चन्द्र, अग्नि एवं विद्युत्-समूह की प्रभा को पराजयकारी, महादीप्तिमती स्वप्रकाशा वृन्दाटवी जिस किसी के चित्त में एकबार भी उदित होती है फिर उसके मन में धन, स्त्री-पुत्र एवं प्रतिष्ठादि विषय-वासना स्थान नहीं पा सकतीं ।

[३८]

श्रीराधिका-मुरलीमोहन केलिकुञ्जपुञ्जेन मञ्जुलतरा रससिन्धुदोग्ध्री ।
स्वानन्द चिन्मय-महाद्भुत स्वत्त्ववृन्दवृन्दाटवी मम सबीजमघं निहन्तु ॥

श्रीराधिका-मुरलीमनोहर के केलि-कुञ्ज पुञ्जों से जो मनोहरतरा हो रही है, जो रस-समुद्र की प्रभवस्थली (उत्पन्न करने वाली) है। स्वानन्द चिन्मय-रसपूर्ण महाद्भुत प्राणियों के द्वारा सेवित यह श्रीवृन्दाटवी मेरे पापों को समूल (पापवीज-अविद्या के सहित) विनाश करे ।

[३९]

वृन्दाटवी सहजवीत समस्तदोषा दोषाकरानपि गुणाकरतां नयन्ती ।
पोषाय मे सकलधर्मबहिष्कृतस्य शोषाय दुस्तर महाधचयस्य भूयात् ॥

यह श्रीवृन्दावन जीवों के समस्त दोषों को सहज में नाश करता है, यह सर्वदोषयुक्त दुष्टगणों को भी गुणमण्डित कर देता हैं। यह श्रीबृन्दावन मुझ सर्वधर्महीन का पालन करे एवं मेरे दुस्तर महान पापों को नष्ट करे—यही प्रार्थना है ।

[४०]

वृन्दाटवीबहुभवीय सुपुण्यपुञ्जान्नेत्रातिथिर्भवति यस्य महामहिम्नः ।
तस्येश्वरः सकलकर्ममृषाकरोति ब्रह्मादय स्तमतिभक्तियुताः स्तुवन्ति ॥

अनेक जन्मों के सुपुण्य-समूह के कारण श्रीवृन्दावन जिस महान पुरुष के दृष्टिगोचर होता है, उसके (पूर्वसञ्चित तथा आगामी) समस्त कर्मों को भगवान् झूंठा (नाश) कर देते हैं एवं ब्रह्मादि उसकी अति भक्ति पूर्वक स्तुति करते हैं।

[४१]

वृन्दावने सकलपावन पावनेऽस्मिन् सर्वोत्तमोत्तम चर स्थिर सत्त्वजातौ।
श्रीराधिकारमण भक्तिरसैककोषे तोषेण नित्यं परमेण कदा वसामि ?॥

सकल पवित्रता को पवित्र करने वाले, सर्वोत्तमोत्तम स्थावर-जङ्गम से निषेवित (सन्मानित-सेवित), एवं श्रीराधा-रमण की भक्तिरस के एकमात्र कोश (आधार) स्वरूप इस श्रीवृन्दावन में मैं कब नित्य परमानन्दपूर्वक वास करूंगा ?

[४२]

वृन्दाबने सकलपावन पावनेऽस्मिन्
सर्वोज्ज्वलोज्ज्वलदुदारमतिः सदाऽस्ते।
सर्वोत्तमोत्तम महामहिमन्यनन्ते
सर्वाद्भुताद्भुत महारसराजधाम्नि॥

सर्व-पावन पावन सर्वोत्तमोत्तम महामहिमायुक्त सर्व-चमत्कार-चमत्कारी महारस (शृङ्गार रस) की राजधानी इस श्रीवृन्दावन में सर्वश्रेष्ठ उज्ज्वलरस के (अधिनायक) उदारमति (श्यामसुन्दर) नित्य ही विराजमान हैं अथवा सर्वोज्ज्वलो-ज्ज्वल उदारमति वैष्णव नित्य विराजमान हैं।

[४३]

वृन्दावने स्थिरचराखिल सत्त्ववृन्दानन्दाम्बुधिस्नपन दिव्यमहाप्रभावे।
भावेन केनचिदिहामृतये वसन्ति ते सन्ति सर्वपरवैष्णवलोकमूर्ध्नि॥

स्थावर जङ्गमादि निखिल जीवों को आनन्द-समुद्र में मज्जन कराने वाले, दिव्य महाप्रभावशाली इस वृन्दावन में जिस किसी भी भाव को आश्रय कर जो आमरण (मृत्युपर्यन्त) वास करते हैं—वे ही सर्वश्रेष्ठ वैष्णवगणों के मुकुटमणि हैं।

[४४]

वृन्दाटवी विमल चिद्घन सत्ववृन्दा वृन्दारक प्रवरवृन्द-मुनीन्द-वन्द्या।
निन्द्यानपि स्वकृपयाऽद्भुत वैभवेन माद्दव् पशून् स्वचरणानुचरीः करोतु॥

श्रीवृन्दाटवी में जो वास करते हैं, वे समस्त ही निर्मल एवं चिन्मय शरीर को प्राप्त करते हैं; सर्वश्रेष्ठ पूज्यनीय मुनीन्द्र-वृन्द इस धाम की महिमा वर्णन करते हैं। मुझ जैसे निन्दनीय पशुओं को भी श्रीवृन्दावन अपनी कृपा एवं अद्भुत विभूति को प्रकाश कर अपने चरणों की दासी करें—यही प्रार्थना है।

[४५]

शाखीन्द्रैः कोटिकल्पद्रुम परममहावैभवैः सात्वतश्रु-
त्युद्गानोन्मत्त-कीर प्रमुख खगकुलैः कृष्णरङ्गैः कुरङ्गैः।
दिव्यै-र्वापी-तड़ागैरमृतमय सरःसत्सरिद्रत्नशैलैः
कुञ्जैरानन्दपुञ्जैरिव कलय महामञ्जु वृन्दावनं भोः॥

कोटि कल्पवृक्षों की परम-महाविभूति से सम्पन्न वृक्षराजों से जो शोभित है, वैष्णवों के द्वारा—श्रुतियों के उच्च गान से उन्मत्त होकर कीर (शारी) प्रमुख पक्षिकुल एवं श्रीकृष्ण को आनन्द देने वाले हरिणकुल (अथवा काले रङ्ग के हरिणकुल) जहाँ विहार कर रहे हैं, दिव्य दिव्य कूप, तड़ागादि के द्वारा जो मण्डित होरहा है, तथा अमृतमय सरोवरों, नदियों एवं मणिमय पर्वतों से जो अलंकृत है—ऐसे श्रीवृन्दावन की मनोहर शोभा हो रही है-अहो! दर्शन कर।

[४६]

विश्वैश्वर्यं महाचमत्कृतिरियं किं भाति सर्वेशितु
र्ब्रह्मानन्द सुधाम्बुधेरनवधेः किम्वाऽद्भुतोऽयं रसः।
किंवा दिव्यसुकल्प पादप-वनश्रेणी सुबीजं परं
कृष्णप्रेमनुताद्भुता परिणतिर्वृन्दाटवी किन्त्वियम् ॥

यह वृन्दाटवी क्या उस सर्वेश्वर के विश्व के ऐश्वर्यसमूह की महाचमत्कारकारी कारीगरी विशेष है ? या असीम ब्रह्मानन्द-सुधा-समुद्र का अद्भुत कोई अनिर्वचनीय रस विशेष ? अथवा, दिव्य-दिव्य उत्तमोत्तम कल्पवृक्ष युक्त बनराज का सर्वश्रेष्ठ बीज विशेष है? या यह श्रीवृन्दावन कृष्णप्रेम की प्रशंसनीय एक अद्भुत परिणति है ?

[४७]

श्रीकृष्णैकान्तभावं क्वनु सकलजनोऽवश्यमाप्नोत्ययत्नात्
कृष्णस्याश्चर्यसीमा परमभगवतः कुत्र लीलार्थमूर्त्तिः।
कुत्रत्या कृष्णपादाम्बुजभजन महानन्द साम्राज्यकाष्ठा
भ्रातर्वक्ष्येरहस्यं शृणु सकलमिदं श्रीलवृन्दाबनेऽत्र ॥

श्रीकृष्ण में एकान्तभाव अनायास सब जीवों को निश्चयरूप से कहाँ प्राप्त होता है? परमभगवान् श्रीकृष्ण का महाश्चर्यजनक केवल लीलाविग्रह कहाँ दीख पड़ता है ? और फिर श्रीकृष्ण के पादपद्मों के भजन से उत्पन्न होने वाले महानन्द की पराकाष्ठा कहां देखी जा सकती है ? भाई ! मैं कहता हूँ, रहस्यमय कथा सुन, इसी श्रीवृन्दावन में ही ये समस्त वस्तुएं प्राप्त होती हैं।

[४८]

भ्रातस्तिष्ठ तलेतले विटपिनां ग्रामेषु भिक्षामट
स्वच्छन्दंपिब यामुनं जलमलं चीरैः सुकन्थां कुरु।

सम्मानं कलयति घोरगरलं नीचापमानं सुधां
श्रीराधामुरलीधरौ भज रसाद्वृन्दावनं मा त्यज ॥

भाई ! वृक्षों के नीचे नीचे अवस्थान कर, ग्राम-ग्राम में भिक्षा कर, स्वच्छन्द चित्त से यमुना का जल यथेष्ट पान कर, चीरों (चीथड़ों) के द्वारा उत्तमोत्तम कन्था तैयार कर, सम्मान को घोर विष एवं नीचापमान (तुच्छ-अपमान) को ही अमृत जान। भ्रातः ! प्रेम से श्रीराधामुरलीधर का भजन कर, श्रीवृन्दावन को त्याग मत कर।

[४९]

कृष्णानन्दरसाम्बुधेः परतरं सारं विचित्रोज्ज्वला-
कारं पारगतैरपि श्रुतिशिरोवृन्दस्य नेक्ष्यं मनाक् ।
श्रीवृन्दाविपिनं सुदुर्लभतरं प्रत्याशमासाद्य भोः
क्षुद्राशा कु-पिशाचिका वशगतो वम्भ्रम्यसे किं बहिः ॥

कृष्णानन्द-रस-समुद्र के विचित्र उज्ज्वलाकार श्रेष्ठतम सार का किञ्चित्मात्र भी दर्शन श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वेदवित् शिरोमणिगण भी कभी प्राप्त नहीं कर सकते। भ्रातः ! उसी सुदुर्लभतर श्रीवृन्दावन में आकर भी तू क्षुद्र-वासनारूप कुत्सित पिशाची के वश होकर बहिर्मुख हुआ वृथा क्यों घूमता है ?

[५०]

भ्रात स्ते किमु निश्चयेन विदितः स्वस्यान्तकालः किमु
त्वं जानासि महामनुं बलवतो मृत्यो र्वेतिस्तम्भने ।
मृत्युस्तत्करणं प्रतीक्षत इति त्वं वेत्सि किंवा यतो
बारंबारमशङ्क एव चलसे वृन्दाबनादन्यतः ॥

अरे भाई ! तू क्या अपने मृत्युकाल को निश्चयरूप से जानता है—कि कब होगा ? बलवान मृत्यु की गति को रोकने

विषये क्या तू कोई महामन्त्र जानता है ? मृत्यु तुम्हारे कार्य की अपेक्षा (इन्तजार) करेगी—क्या तेरी ऐसी धारणा है ?—जो तू बारम्बार निशङ्कचित्त होकर श्रीवृन्दावन से अन्यत्र चला जाता है ।

[५१]

श्रीवृन्दाख्य-मनन्य-भक्तिरसदं गोविन्दपादाम्बुज-
द्वन्द्वे मन्दधियो विदन्ति नहि तद्वासञ्च नाशासते ।
सान्द्रानन्दरसाम्बुधिर्निरवधि यत्राविरस्ति ध्रुवं
नो मज्जन्ति कुबुद्धियो वत समुद्विग्नाः सुदुःखैरपि ।।

श्रीवृन्दावन, श्रीगोविन्द के युगल पादपद्मों में अनन्य भक्तिरस दान करता है—यह बात मन्दबुद्धि लोग नहीं जानते, वे श्रीवृन्दावन में वास करने की आशा भी नहीं करते । असीम गाढ़ आनन्द-समुद्र जहां निश्चित ही आविर्भूत हुआ है, हाय ! मूर्ख लोग अनेक दुखों के द्वारा व्याकुल चित्त होते हुए भी (उस रस-समुद्र में) मज्जन करना नहीं चाहते ।

[५२]

न वेदाज्ञाभङ्गे कुरु भयमयेनापि वचनं
गुरुणां मन्येथाः प्रविश नहि लोकव्यवहृतौ ।
कुटुम्बाद्येदीने द्रव न कृपया नो भव सितोऽ-
सकृत् स्नेहै वृन्दावनमनु हठान्निःसर सखे ! ।।

हे सखे ! वेदों की आज्ञा को भङ्ग करने में भय मत कर, गुरुजनों (माता-पितादि) के वचनों को मत मान, लोक-व्यवहार में प्रवेश (लोकापेक्षा) न कर, दीनचित्त कुटुम्बियों के प्रति करुणा से द्रवित न हो; स्नेह में आकर बारम्बार संसार में आबद्ध न हो, श्रीवृन्दावन के लिये शीघ्र ही धावित हो ।

[५३]

यत्राभङ्गस्मरविलसितैः क्रीड़तो दम्पती तौ
गौरश्यामौ प्रतिपद महाश्चर्य सौन्दर्यराशी।
सान्द्रानन्दोन्मद-रस-महासिन्धु संमज्जितालीवृन्दौ
वृन्दावनमिह महादुर्भगा नाश्रयन्ते ॥

जहाँ निरन्तर कामविलास में क्रीड़ा परायण होकर प्रतिक्षण महाश्चर्यमय लावण्य-सौन्दर्य राशि का विस्तार करते हुए वही गौर—श्यामाङ्ग युगलकिशोर गाढ़ आनन्द पूर्वक उन्मत्तकारी रस के महासमुद्र में सखीवृन्द को निमज्जित कर विहार कर रहे हैं, उस इसी श्रीवृन्दावन का महादुर्भाग्य मनुष्य ही आश्रय नहीं करते।

[५४]

राधानागर केलिसागर निमग्नालीदृशां यत्सुखं
नोतल्लेशलवायते भगवतः सर्वोऽपि सौख्योत्सवः।
तत्राशय कस्यचिन्निरुपमां प्राप्तस्य भाग्यश्रियं
तद्वृन्दावननाम्नि धाम्निपरमे स्वीयं वपुर्नश्यतु ॥

श्रीराधानागर के केलि—समुद्र में निमग्न सखियों के नेत्रों को जो सुख होता है, श्रीभगवान् के सकल सुखोत्सव भी उस सुख के लवलेश तुल्य नहीं हैं। अनुपम सौभाग्य-लक्ष्मीवान् जिस किसी व्यक्ति की यदि उस सुख को प्राप्त करने की आशा हो, तो श्रीवृन्दावन नामक परमधाम में अपने शरीर का पात करे (देहान्त करे)।

[५५]

राधाकेलिमृगस्य कस्यचिदहो श्यामस्य यूनो नव-
स्याभीरीगणकाङ्क्षमा करुणादृष्टेः स्मरोन्मादिनी।

सर्वाम्नाय-दुरुह-कृष्णरस सर्वस्वैक सञ्चारिणी
श्रीवृन्दाविपिनाभिधा विजयते कन्दर्पकेलिस्थली ॥

आभीरीगण (गोपियाँ) जिसकी करुणापूर्ण दृष्टि की प्रार्थना करती हैं, उसी श्रीराधा-केलि-मृग किसी एक श्यामाङ्ग नवीन युवक को कामोन्मत्तता विधान करने वाली एवं समस्त वेदों के सुगुप्त कृष्ण-रस के सर्वस्व को ही सम्यक् प्रकार सञ्चार करने वाली श्रीवृन्दाटवी नामक कामविलासस्थली सर्वोत्कर्ष-युक्त विराजमान है।

[५६]

महारङ्कत्वे वा परमविभवे बहुतरे
सुखे वा दुखे वा यशसि बहुलेऽवापयशसि ।
मणौ वा लोष्ट्रे वा सुहृदि परमे विद्विषति वा
समादृष्टिर्नित्यं मम भवतु वृन्दावनजुषः ॥

महादारिद्र्य में अथवा परम विभुत्व में, महान सुख में अथवा विषम दुख में, बहुत यश में अथवा अपयश में, मणि में अथवा मिट्टी के डेले में, परम बन्धु में अथवा परम शत्रु में—वृन्दावन वास करते हुए मेरी नित्य समानदृष्टि हो।

[५७]

आश्चर्यं धाम—वृन्दावनमिदमहहाश्चर्यमत्रापि राधा-
कृष्णाख्यं गौरनीलद्वय मधुरमहस्तत्पदाम्भोरुहे च ।
आश्चर्यः शुद्धभावः परमपदमथारुह्य तन्निष्ठ एवा-
श्चर्यः कश्चिन्महात्मा परमसुविरलस्तद्विदाश्चर्य एव ॥

यह श्रीधाम वृन्दावन आश्चर्य है। अहो ! इससे और एक आश्चर्य है—श्रीराधाकृष्णाख्य गौर-नीलवर्णयुक्त दोनों का

मधुर विग्रह; और इनके चरणकमलों में जो शुद्धभाव—वह भी एक आश्चर्य है, और एक आश्चर्य वह है, परमपद (श्रीवृन्दावन) में आकर जिसकी इसमें निष्ठा है, और इस समस्त तत्व को जानने वाला परम विरला कोई एक महात्मा भी एक आश्चर्य ही है।

[५८]

सखे न जनरञ्जनं कुरु कदिन्द्रियाणां सदा
विधेहि बहुगञ्जनं प्रणयभञ्जनं सर्वतः।
हठं न कुरु बन्धने सुत-कलत्र-मित्रादिके
वपुर्व्ययसमीहया निवस वत्स वृन्दावने॥

हे सखा! लोकों के रञ्जन (प्रसन्नता) के लिए तू यत्न न कर, सर्वदा हर ओर से जैसे प्रीति टूटे, उसी प्रकार की बहु ताड़ना इन शोभाहीन इन्द्रियों के प्रति विधान कर, स्त्री पुत्र-बन्धु आदि के प्रति आसक्ति में और हठ न कर; वत्स! जब तक शरीर रहे, प्रतिज्ञा पूर्वक इस श्रीवृन्दावन में वास कर।

[५९]

राधामाधवयो र्यशांसि सततं गायं स्तथा कर्णयन्
तज्जीवेषु च वर्णयन् समरसैः सम्भूय सन्तर्कयन्।
कुञ्जं कुञ्जमनारतं बहुपरिष्कुर्वन्महाभावतो
देहादौ कृतहेलनो दयितहे वृन्दाटवीमावस॥

हे दयित (हे प्यारे)! श्रीराधामाधव के यश का निरन्तर गान एवं श्रवन करते करते, श्रीराधागोविन्द के जीवों (भक्तों) के निकट उसका वर्णन करते करते, समरस रसिक भक्तों के साथ मिलकर इष्टगोष्ठी करते करते, निरन्तर कुञ्जों को

बारम्बार परिष्कार (बुहारी) करते करते तथा महानुरागवश (प्रेमवश) देहके प्रति निरपेक्ष होकर श्रीवृन्दाटवी में वास कर।

[६०]

मुक्तिश्रीभिः स कलितपदो नारकं याति धावन्
लब्ध्वा चिन्तामणिमथ महावारिधौ निक्षेपेत् सः।
कृत्वा वश्यं सकलभगवच्छेखरं श्वाऽधमः स्याद्
यो दुर्बुद्धिस्त्यजति सहसा प्राप्य वृन्दाबनं तत् ॥

जो दुर्बुद्धि मनुष्य वृन्दाबन में आकर भी सहसा त्याग कर अन्यत्र चला जाता है, वह मानों मुक्ति द्वारा गृहीत-पद होकर भी नरक में धावित होता है, हाथ में चिन्तामणि लेकर उसे महासमुद्र में फैंकता है, और सकल-भगवत्-शिरोमणि (परम भगवान्) को आधीन करके भी वह कुत्ते से अधम है।

[६१]

सेवा वृन्दावनस्थ-स्थिर-चर-निकरेष्वस्तु मे हन्त केवा
देवा ब्रह्मादयः स्यु स्तत उरुमहिता वल्लभा ये ब्रजेन्द्रोः।
एते ह्यद्वैत सच्चिद्रसघनवपुषो दूरदूरातिदूर-
स्फुर्ज्जन्माहात्म्यवृन्दा वृहदुपनिषानन्द जानन्द कन्दाः ॥

श्रीवृन्दावन के स्थावर जङ्गम की सेवा मुझे प्राप्त हो। अहो ! जो गोकुलचन्द्र के प्रियतम हैं, वे ब्रह्मादि देवताओं से भी अधिकतर पूजा करने योग्य हैं। ये श्रीकृष्ण प्रियजन अद्वय सच्चिदानन्दघनमूर्त्ति हैं—इनकी महिमा दूरातिदूर (मानव-बुद्धि के अगोचर) स्फूरित होती है। अति प्राचीन उपनिषदों को भी आनन्द प्रदान करने वाली जो महानन्दराशि है, ये उसके भी मूल-बीज स्वरूप हैं।

[६२]

नाहंवेद्मि किमेतदद्भुततमं वस्तुत्रयी मस्तकैः
स्तव्यं प्रीतिभरेण गोकुलपतिर्यन्नित्यमासेवते ।
कन्दं प्रेमरहस्य किं मधुरिमोत्कर्षान्त्यसीमोद्भुत
सान्द्रानन्दरसस्य वा परिणति वृन्दावनं पावनम् ॥

मैं नहीं जानता वह कैसी अद्भुततम वस्तु है, जिसकी वेदसमूह नतमस्तक होकर वन्दना करते हैं और श्रीगोकुलपति प्रेमपूर्वक जिसकी नित्य सेवा करते हैं। यह परम पवित्र श्रीवृन्दाबन क्या प्रेमरस का मूल बीज है ? या माधुर्योत्कर्ष की चरमसीमा प्राप्त अद्भुत गाढ़ आनन्दरस का परिणाम ?

[६३]

लोकाः स्वच्छन्दनिन्दां विदधति यदि मे किं ततो दीनदीनं
सर्वंचेत् स्यात् कुटुम्बं किमिव मम ततो दुर्दशाःस्यु स्ततःकिम्?
सेवाधीशस्य न स्याद् यदि किमिव ततः श्रीलवृन्दावनेऽहं
स्थास्यम्यास्थाय धैर्यं मम निजपरमाभीष्टसिद्धिर्भवित्री ॥

यदि सब लोक मेरी यथेष्ट निन्दा करें, उससे मेरी हानि क्या ? यदि मेरा सब कुटुम्ब दीनातिदीन (अत्यन्त दरिद्री) हो जाय, तो उससे मेरा क्या बिगाड़ ? मेरी अत्यन्त दुर्दशा हो तो क्या ? और यदि भगवान् की सेवा मुझसे न बन पड़े, तो मेरी हानि क्या ? किन्तु मैं श्रीवृन्दावन में धैर्यपूर्वक वास करूँगा—अवश्य ही मुझे अपनी परम-अभीष्ट वस्तु प्राप्त होगी ।

[६४]

कन्था कौपीनवासा स्तरुतलपतितैः क्लृप्तवृत्तिर्फलाद्यैः
कुर्वन्नव्यर्थवार्त्तां कथमपि न वृथा चेष्टया कालयापी ।

त्यक्त्वा सर्वाभिमानं प्रतिगृहमटनं तुच्छभैक्षायकुर्वन्
वृन्दारण्ये निवत्स्याम्यनिशमनुसरन् राधिकैकात्मलोकान् ॥

कन्था कौपीन धारण करते हुए, वृक्षों के नीचे गिरे हुए फल आदि के द्वारा जीविका निर्वाह करके, आवश्यक वार्ताओं की आलोचना करते हुए एवं किसी प्रकार भी समय को वृथा व्यतीत न करके, सकल अभिमान त्यागपूर्वक तुच्छ भिक्षा के लिये घर घर में जाकर तथा श्रीराधिकाजी के निज जनों (प्रिय भक्तों) का अनुसरण करते करते मैं निरन्तर श्रीवृन्दावन में ही वास करूंगा।

[६५]

स्त्रीमात्रे मातृबुद्धिः स्थिर-चर-निखिलप्राणिषूपास्यबुद्धि
र्बाह्याशेषार्थलाभेष्वपि हृदयमुखम्लानिकृद्धानिबुद्धिः ।
देहस्त्रीवित्तपुत्रादिषु नहि ममधीर्मित्रबुद्धिः स्वशत्रु
स्वा पीड़ायां समन्तात् सुखमतिरमितानन्द वृन्दावनेऽस्तु ॥

स्त्री-मात्र में मेरी मातृ-बुद्धि हो, स्थावर जङ्गमात्मक समस्त प्राणियों में मेरी उपास्यबुद्धि हो एवं सांसारिक समस्त अर्थों के लाभ में भी हृदय एवं मुख की म्लानिजनक हानिबुद्धि उत्पन्न हो। देह, स्त्री, धन और पुत्रादि में ममताबुद्धि न रहे तथा अपने को विशेषभाव में पीड़ा देने वाले शत्रुओं में भी मेरी मित्रबुद्धि हो। इस प्रकार से सर्वदा सुखमग्नचित्त होकर अपरिसीम आनन्दमय श्रीवृन्दावन में मैं वास कर सकूं।

[६६]

तिक्तीभूता विमुक्तिर्विषमनिरयवाद्भाति सर्वेन्द्रियार्थः
सर्वे भोगा भवन्ति प्रवल गरल वन्ह्युद्भटज्वालकल्पाः ।
कीटप्रायाः समस्त-प्रवर-सुरगणाः सिद्धयश्चेन्द्रजाल-
प्रायाः संस्वाद्य वृन्दावन-रसिकरसं माद्यते मेऽद्यहृद्यम् ॥

विमुक्ति तिक्त (कड़वी) लगती है, समस्त इन्द्रियों के विषय विषम नरक के समान प्रतीत होते हैं एवं निखिल भोग-पदार्थ प्रबल विष एवं अग्नि की तीव्र ज्वाला के सदृश लगते हैं। श्रेष्ठ श्रेष्ठ देवता कीड़ों के समान एवं अष्टसिद्धियाँ इन्द्रजाल-वत् प्रतीयमान होती हैं, क्योंकि आज मेरा हृदय श्रीवृन्दाबन-रसिक (श्रीश्यामसुन्दर) का रस आस्वादन करके मतवाला हो रहा है।

[६७]

त्यक्त्वा वृन्दावनमिदमहो चेद्बहिर्यासि नूनं
क्षिप्त्वा कल्पद्रुमवरवनं हन्त शाखोटमेषि।
हित्वा वृन्दावन-रसकथामन्यवार्त्तां रुचिश्चेत्
ज्ञातं क्षिप्त्वा परममृतं भोक्तुमिच्छुः श्वविष्ठाम् ॥

यदि इस वृन्दावन को त्यागकर तू अन्यत्र जाये, तो सचमुच तू कल्पवृक्षों के श्रेष्ठ बन को छोड़कर काई (सिवार) के जङ्गल में जाता है। यदि वृन्दावन के रस की कथा को छोड़ कर और वार्ता तुम्हें अच्छी लगे, तब तू जान ले कि उत्तमोत्तम अमृत को त्याग कर कुत्ते की विष्ठा भोजन करने की तुम्हारी इच्छा होती है।

[६८]

पापात्मा पुण्यवान् वा प्रसरदपयशा कीर्त्तिमान् वा महादु-
र्व्याप ग्रासोऽथ सम्राड़समजड़मतिः सर्व्वविद्यानिधि र्वा।
यः कोऽपि स्त्वं सखेनोगणाय कथमपीक्षस्य वृन्दावनं तत्
छिन्धि छिन्धि स्वपाशान् गुरुनिगमगिरा स्वीयमोहैकसिद्धान् ॥

पापी या पुण्यात्मा, प्रसिद्ध अपकीर्त्ति या कीर्त्तिमान, महादरिद्र या महासम्राट, विषम जड़मति या सर्वविद्या-विशारद

तुम जो कुछ भी क्यों नहीं हो, हे सखा! तू इनमें अपनी कुछ भी गणना न कर। किन्तु जैसे भी हो उस वृन्दावन के दर्शन कर और गुरु एवं शास्त्राज्ञानुसार अपने मोह के मूलस्वरूप अपने बन्धनों को छेदन कर।

[६९]

नाहन्ता ममते वृथा कुरु सखे! देहालय स्त्रयादिके
छित्वा दुर्ज्जरश्रृङ्खलं गुरुगिरा ते मोहमात्रोदितम्।
वृन्दारण्यमुपेत्य शीघ्रमखिलानन्दैक साम्राज्यसत्
कन्दं कन्दफलादिवृत्तिरनिशं तन्नाथलीलां स्मर ॥

हे सखे! देह, गृह, स्त्री आदि में वृथा 'अहं' 'मम' बुद्धि न कर, मोह मात्र ही उत्पन्न करने वाले इन पाशों (ज़ञ्जीरों) को गुरु वाक्यों द्वारा तोड़। समस्त साम्राज्यसुख के बीजस्वरूप श्रीवृन्दावन में शीघ्र पहुंच कर कन्द फलादि द्वारा जीवन धारण करते हुए श्रीवृन्दाबनचन्द्र की लीला निरन्तर स्मरण कर।

[७०]

न कुरु न कुरु मिथ्या देहगेहाद्यपेक्षाँ
मृतिमखिलपुमर्थभ्रंशिकां विद्धि मूर्ध्नि।
चल चल सुहृदद्यैवाभिमुख्येन वज्रा-
दपि च हृदिकठौरः श्रीलवृन्दावनस्य ॥

मिथ्या देहगेहादि की कभी अपेक्षा न कर, समस्त पुरुषार्थों को नाश करने वाली मृत्यु को सिर पर खड़ा जान, हे बन्धो! आज ही श्रीवृन्दावन के लिये वज्र से भी कठोरचित्त होकर चल दे।

[७१]

अद्यैव मूर्ख चल सर्वमिदं विहाय वृन्दावनाय सकलार्थ सुरद्रुमाय।
श्रीराधिकासुरतनाथ विशुद्धभावसत्रायमैव कुरु कृत्य समास्त्यपेक्षाम् ॥

अरे मूर्ख ! आज ही सब कुछ (विषय-सम्पदादि) परित्याग कर सर्ववाञ्छा-कल्पतरु श्रीराधा-सुरतनाथ के विशुद्ध भाव के सुलभ प्राप्ति स्थल—इस वृन्दावन की यात्रा कर। आरब्ध (जो आरम्भ कर रखे हैं) कार्यों की समाप्ति पर्यन्त और अपेक्षा न कर।

[७२]

साधो शक्नोषि नो चेत् सकलमपि हठात् स्वप्नकल्पं विहातुं
तर्हि त्वं ध्याय वृन्दावनमनिशमथोपास्य वृन्दावनेशौ।
तन्नामान्येव नित्यं जप सततमथो तत्कथां संश्रृणुष्व
श्रीमद्वृन्दावनस्थानथ परिचर भो भोजनाच्छादनाद्यैः॥

हे साधो ! यदि तू इन समस्त स्वप्नकल्पित वस्तुओं का सहसा त्याग नहीं कर सकता, तो श्रीवृन्दावन के युगलकिशोर की उपासना करते हुए निरन्तर श्रीवृन्दावन का ध्यान कर। प्रति क्षण उनके नामों का जप कर, निरन्तर उनकी कथाओं (लीलाओं) को श्रवण कर और सब वृन्दावनवासियों को भोजन वस्त्रादि देकर उनकी सेवा कर।

[७३]

वस्तुः कोटिगुणं श्रुतं हि सुकृतं वासोऽन्नवासादिभिः
तीर्थे वासयितुः स्वयं हि तरति द्वौ तौं स यत्तारयेत्।
प्रेमानन्दरसात्मधामनि परे वृन्दावन वासक-
स्त्वाश्चर्यां वृषभानुजाप्रियरतिं प्राप्नोत्यनायासतः॥

जो वस्त्र-अन्न या वासस्थानादि के द्वारा तीर्थ (श्री वृन्दावन) में किसी को वास कराता है, वह श्रीवृन्दावन में वास करनेवाले से भी कोटिगुणा अधिक पुण्य का पात्र होता है; क्योंकि जो वास करता है, वह तो केवल स्वयं उत्तीर्ण होता है;

और जो दूसरे को वास कराता है, वह अपना एवं जिसको वास कराता है—उसका उद्धार करता है। श्रेष्ठ प्रेमानन्द-रसस्वरूप श्रीधाम वृन्दावन में जो दूसरे को वास कराता है, वह श्रीवृष-भानु किशोरी के प्रिय श्रीकृष्ण में आश्चर्यमय रति को अनायास ही प्राप्त कर लेता है।

[७४]

निष्किञ्चनान् कृष्णरसे निमग्नान् महानिरीहान् जनसङ्गभीतान्।
वृन्दावनस्थान् वसनाशनाद्यैः यः सेवतेऽसौ वशयेत्तदीशौ ॥

निष्किञ्चन, कृष्णरस में मग्नचित्त एवं महानिरीह (वासना रहित) तथा जन-सङ्ग-भीत (एकान्त-प्रिय) श्री वृन्दावन में वास करनेवाले महात्माओं का जो वस्त्र एवं भोजन आदि के द्वारा सेवा करता है, वह श्रीयुगलकिशोर को ही वशीभूत कर लेता है।

[७५]

वृन्दारण्यमनन्यभाव मधुराकारेहितो राधिका-
कृष्ण-क्रीड़ित रञ्जित-प्रविलसत् कुञ्जावलीमञ्जुलम्।
योऽन्यत्रापि कृतस्थितिर्विधिवशाच्छोचन् सदा चिन्तये-
न्नित्यं तन्मिलनं विचिन्तयदहं तद्धामयुग्मं भजे ॥

जो अन्य स्थान में वासरूप दुर्भाग्य से दुखी होते हुए अनन्य भाव से मधुराकृति श्रीवृन्दावन के लिये लालायित होकर श्रीराधाकृष्ण के क्रीड़ामय, रमणीय एवं विलासमय कुञ्जों से परिशोभित श्रीवृन्दावन की सदा चिन्ता करता रहता है, उसको (श्रीवृन्दावन में) मिलने के लिये जो नित्य चिन्ता करते हैं, उन ज्योतिर्मय श्रीयुगलकिशोर का मैं भजन करता हूँ।

[७६]

राज्यं निष्कण्टकमपि परित्यज्य दिव्याश्चरामाः
कामान् सर्वानपि च विहितां स्तिक्ततिक्तान् विदन्तः ।
हित्वा विद्या-कुल-धन जनाद्याभिमानं प्रविष्टा
ये श्रीवृन्दाविपिनमपुनर्निर्गमा स्तान् नमामः ॥

निष्कण्टक राज्य को एवं दिव्य रमणीगणों को भी त्याग कर हर प्रकार की विहित वासनाओं को अतीव तिक्त(दुखमयी) जानकर तथा विद्या, कुल, धन-परिवार आदि का अभिमान भी त्याग कर जो श्रीवृन्दावन में प्रवेश करके फिर वहां से बाहर नहीं जाते, उनको हम नमस्कार करते हैं।

[७७]

राधाकृष्णौ परममृणिणौ कुर्वतः सर्वतः श्री
विष्णोर्धाम्नः स्फुरदतिमहानन्द वृन्दावनस्थान् ।
जन्तून् हन्तु विरचितकृतीन् पुरुप्रेमभाजो
दाने मानै रहह भजतो धन्य धन्यान् नमामः ॥

श्रीविष्णु के समस्त धामों से (परव्योम से) भी अधिक स्फुर्त्तिशील महानन्दमय जो श्रीवृन्दावन है, उस धाम के सब जीव अपनी हत्या करने वालों की भी दान और मान से सेवा करते हैं एवं जिन्होंने श्रीराधाकृष्ण को परम ऋणी किया है, उन पूर्ण प्रेम के भाजन धन्य धन्य पुरुषों को हम नमस्कार करते हैं।

[७८]

मरिष्यसे कदा सखे ! त्वमिति किं विजानासि किं
शिशोः सुतरुणस्थ वा न खलु मृत्युराकस्मिकः ।
तदद्य निरवद्यधीरवपुरिन्द्रियासक्तिको
न किश्चन् विचारय द्रुतमुपैतु वृन्दावनम् ॥

हे सखे ! किसदिन मृत्यु होगी, क्या तू यह जानता है ? बालक या नवीन युवक की क्या अकस्मात मृत्यु नहीं होती है ? अतएव अनिन्दनीय बुद्धि एवं देह इन्द्रियादि से आसक्तिरहित होकर कोई विचार न करते हुए आज शीघ्र ही श्रीवृन्दावन के लिये चल दे ।

[७९]

शुद्धामाद्यरतिं समस्तभगवद्रत्युच्छ्रितं श्रीमतीं
त्वं चेत् कांक्षसि माधुरीभर-धुरीनानन्द सन्दोहिनीम् ।
धर्म-ज्ञान-विरक्ति भक्तिपदवीं तत्साध्यमप्यस्पृशन्
दुर्भेदं सहसा विभिद्य निगड़ं संन्यस्य वृन्दावने ।।

समस्त भगवत् रतिसमूह से भी उन्नत श्रीयुक्त एवं माधुर्य-रस श्रेष्ठ आनन्दयुक्त विशुद्ध आद्यरति (मधुराकृति) को यदि तू चाहता है, तो धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं भक्तिरूप साधन तथा उसके साध्य को स्पर्श न करके दुर्भेद्य पाशों को बलपूर्वक तोड़कर श्रीवृन्दाबन में निरन्तर वास करने का संन्यासव्रत ग्रहण कर ।

[८०]

महाभाग्यैरबाप्तं वपुरिदमिहाकर्णि महिमाऽ-
द्भुतो वृन्दाटव्याः कलितमखिलं स्वप्नसदृशम् ।
शुभायामाश्वासो नहि नहि मतौ नापि वपुषि
क्षणेऽस्मिन्नेव त्वं तदमिचल वृन्दाबनबनम् ।।

महाभाग्य से यह (नरतन) देह पाया है, (महाभाग्य से) श्रीवृन्दावन की अद्भुत महिमा भी सुनी है, समस्त ससार स्वप्न समान है—यह भी (महाभाग्य से) जान लिया है; शुभ बुद्धि का आश्वास नहीं किया जाता (आज शुभबुद्धि है, कल न

भी रहे) और शरीर का भी विश्वास नहीं है; अतः इसी क्षण ही तू श्रीवृन्दावन के लिए प्रस्थान कर।

[८१]

भ्रात र्यर्हि निमीलितोऽसि नयने तत्र क्व कान्तात्मज-
भ्रातृ-स्वास-सुहृद्गणः क्वच गुणाः कुत्र प्रतिष्ठादयः।
कुत्राहंकृत्यः प्रभुत्वधनविद्याद्यैस्ततः सर्वत
स्त्वं निर्विद्य सविद्य ! किनु न चलस्यद्यैव वृन्दावनम् ॥

हे भ्रातः ! जब तुम दोनों नेत्र बन्द करोगे (मृत्यु को प्राप्त होगे) तब तुम्हारे स्त्री, पुत्र, भ्राता एवं विश्वासपात्र सुहृद-गण कहां रहेंगे ? तुम्हारे गुण, तुम्हारी प्रतिष्ठा आदि किस काम आवेंगे ? प्रभुता, धन एवं विद्याजनित जो अभिमान है, यह कहाँ रहेगा ? इसलिए, हे सुविज्ञ ! सबों से वैराग्य करके आज ही तू क्यों श्रीवृन्दावन नहीं चलता ?

[८२]

रुददपि पितृमातृ बन्धुपुत्रादिकमपहाय निशम्यनार्हदुक्तीः।
हृदि परमकठोरतां दधानो द्रुतमवलोकय कृष्णकेलिकुञ्जम् ॥

रोते हुए पिता, माता बन्धु तथा पुत्रादिकों को भी त्याग कर, (तुम्हारे वृन्दावन जाने में यदि वे स्नेहवश रोते हैं) पूज्य-नीय व्यक्तियों के वाक्यों को सुन ही न—हृदय में परम कठोरता पोषण करते हुए श्रीवृन्दावन के दर्शन कर।

[८३]

रति-रतिपति कोटि सुन्दरं तत्प्रमुषित-कोटिरमा-रमापतिश्रि।
कनक-मरकताभमूर्त्ति वृन्दाबिपिनविहारि महोद्वयं भजामि ॥

कोटि-कोटि रति-कामदेव से भी अधिक सौन्दर्यशाली, कोटि-कोटि रमा एवं नारायण की शोभा को तिरस्कार करने

वाले, स्वर्ण तथा इन्द्रनीलाभ मूर्त्तिधारी तथा श्रीवृन्दावन-विहारी उस ज्योतिर्मय विग्रहयुगल—श्रीयुगलकिशोर को मैं भजता हूँ।

[८४]

तदखिल भगवत्स्वरूप-रूपामृत रसतोऽप्यति माधुरीधूरीणम्।
कुबलय कमनीय धाम राधापदरसपूर्णबिने भ्रमद् भजामः॥

अखिल भगवत्स्वरूपों के रूपामृत रस से भी अतिशय माधुर्य-मण्डित श्रीराधापद-कमल-रस से पूर्ण वन में भ्रमण करनेवाले उस सुप्रसिद्ध कुवलयवत् (नीलकमलवत्) विग्रह (श्यामसुन्दर) की हम भजना करते हैं।

[८५]

अलक्ष्याः श्रीलक्ष्म्या अपि च भगवत्या भगवतः
सदा वक्षस्थाया मधुरमधुराः केचन रसाः।
अहो! यद्दासीभिः सततमनुभूयन्त ऊरुभिः
प्रकारैः स्तां राधां भज दयित! वृन्दाबनेबने॥

भगवती श्रीलक्ष्मीदेवी सदा श्रीभगवान् की वक्षस्थल-विलासिनी होते हुए भी जिन किन्हीं-किन्हीं मधुरतम रस का आस्वादन नहीं कर सकती—अहो! जिनकी दासियाँ भी अनेक प्रकार से उस रस का सर्वदा आस्वादन करती हैं, हे प्रिय! श्रीवृन्दाबन वास करके उस श्रीराधाजी का भजन कर।

[८६]

विषय-विष-कृमीणां बोधमात्रात्मभाजां
समय समय सर्वेशैकभक्त्याश्रितानाम्।
न निजरुचिकरं वर्त्मोत्सृजन्तः स्थिताः स्मो
वयममलसुखौघ स्यन्दि वृन्दावनाशाः॥

विषयरूप विष के जो कृमि हैं (लोलुप हैं) उनका, बोधमात्रात्मवादियों का (रूक्षज्ञानियों का) एवं वृद्धावस्था में (मृत्यु के) भय से भगवान् का भजन करनेवालों का मार्ग हमारे रुचिकर नहीं है। अतः उसको त्यागपूर्वक हम निर्मल सुखराशि देनेवाले श्रीवृन्दावन की आशा लेकर बैठे हैं।

[८७]

उन्मत्तप्रायवाचः परिमूषितधियो माययाऽनर्थबीजं
स्वार्थं मत्वा कृतार्था अथ न सुख विवेकादयो ग्राह्यवाचः।
स्वीयाः सर्वेजिघांसन्त्यहह बहुमृषा स्नेहपाशैर्निबध्य
श्रीवृन्दारण्य ! यायामहमहितसमाजात् कदा निसृत स्त्वाम् ॥

सम्बन्धी अथवा मित्रों के वाक्य पागलों के से हैं, माया से मोहित होकर उनकी बुद्धि-वृत्ति नाश हो गई है; अनर्थों (दुःखों) के बीज को ही स्वार्थ मानकर वे कृतकृतार्थ हो रहे हैं एवं वास्तव सुख तथा विवेकादि के उपदेश को वे ग्रहण नहीं करते। अहो ! मेरे स्वजनगण अत्यन्त झूंठे स्नेहपाशों में बांध कर मुझे मारने की चेष्टा करते हैं। हे श्रीवृन्दावन ! मैं कब इस अनिष्टकारी समाज से छुटकारा पाकर आपके आश्रित होऊँगा ?

[८८]

गृहान्धकूपे पतितः कदा मामुद्धृत्य मूढं कृपया स्वयैव।
कामादि कालाहिगणै र्निगीर्णं मातेव वृन्दाटवि ! नेष्यसेऽङ्कम् ॥

मैं जो गृहरूप अन्धे कूप में गिरा हुआ हूँ, कामादि कराल काल-सर्प से ग्रस्त हूँ एवं मूर्ख हूँ, हे वृन्दाटवी ! आप कब कृपापूर्वक मेरा उद्धार कर, माता की भाँति मुझे अपनी गोदी में स्थान दोगी ?

[८९]

निष्किञ्चनो नित्यविविक्तसेवी वृन्दावने दैवतवृन्दवन्द्ये ।
श्रीराधिकामाधव नाम धामद्वयं कदा भावभरेण सेवे ॥

निष्किञ्चन एवं नित्य निर्जनवासी होकर मैं कब देवतागणों से भी वन्दनीय इस श्रीवृन्दाबन में श्रीराधामाधव नामक जोड़ी की भावपूर्वक सेवा करूँगा ?

[९०]

निज सर्वनाशकरमात्मसुहृत् सुत-दार-मित्र परिवारगणम् ।
परिवञ्चय कर्हि दृढ़बुद्धिरहं प्रपलाय यामि हरिकेलिबनम् ॥

अपना सर्वनाश करनेवाले अपने सुहृद, स्त्री, पुत्र, मित्रादि परिवार के लोगों की वञ्चना कर, कब मैं दृढ़बुद्धि-पूर्वक दौडकर श्रीहरि के केलिबन (श्रीवृन्दावन) का आश्रय करूंगा ?

[९१]

जन्मान्यसंख्यानि गतानि मे वृथा व्यग्रात्मनो देह-गृहादिकेऽया ।
अद्यापि मुह्याम्यपि बुद्धिमानहन्तवैव वृन्दाटवि ! नाम मे गतिः ॥

देह-गृहादि की चेष्टा में व्यग्रचित्त होकर मेरे अनगिनत जन्म वृथा नाश हो गए हैं। हाय ! बुद्धिमान होकर भी आज तक मैं मोह में फँसा रहा; हे वृन्दाटवी ! अब आपका नाम ही मेरी एकमात्र गति है।

[९२]

ऋणग्रस्तोयायां कथमहह वृन्दावनमहं
त्यजेयं वा वृद्धावगतिपितरौ दारशिशुकान् ।
कथं वा मज्जीवान् वत परिहरेयं निजजनान्
सतां श्लाघ्योभूत्वात्यफलकलनो मुह्यति कुधीः ॥

अहो ! ऋणी होकर मैं कैसे श्रीवृन्दावन जाऊं, अगति वृद्ध माता-पिता एवं स्त्री-पुत्रादि को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ; और जो मद्गत-प्राण हैं, ऐसे अपने परिवार के लोगों को मैं कैसे त्याग करूं;—इस प्रकार की निष्फल चिन्ताएँ कर सज्जन पुरुषों से प्रशंसनीय होकर कुबुद्धि पुरुष मोहित होते हैं।

[९३]

जानन्नप्यमृतं विहाये गरलं भुञ्जे स्वयं बन्धनम-
प्यार्त्तिव्रात निबन्धनं दृढ़तरं कुर्वे सुदृक स्वंधवत् ।
श्रीवृन्दाटवि ! मातरेकमिह मज्जीवातुरस्ति स्वयं
यत्त्वं स्नेहमयी विकृष्यजनतां स्वाङ्कं समानेष्यसि ।।

अमृत जानते हुए भी उसे त्याग कर मैं स्वयं विष पान कर रहा हुँ, सुन्दर नेत्र रखते हुए भी महाअंधे की तरह दु:खों के समूह के कारण बन्धन को और दृढ़तर करता जा रहा हूं; हे माता वृन्दाटवी ! मुझे एकमात्र यही जीवनाशा दीखती है कि आप स्नेहमयी हो अत: जनता (परिवार-सम्बन्धियों) से खैंच-कर मुझे अपनी गोद में लेलो गी।

[९४]

राधाकृष्णरहस्य दास्यरस एवेष्ट: पुमर्थो मम
त्यक्त्वा सर्वमहं कदापि नियतं वत्स्यामि वृन्दावने ।
इत्थं स्यादपि वाचि यस्य परमासक्तस्य गेहादिके
नासक्तापिसक्तता परिहृतौ तं पाति वृन्दाटवी ।।

श्रीराधाकृष्ण-रहस्य दास्यरस ही (शृङ्गाररसात्मक-दास्यरस ही) मेरा अभिलषित पुरुषार्थ है, मैं कब यह समस्त त्याग कर नियत काल पर्यन्त श्रीवृन्दवन में वास करूंगा—इस प्रकार से जो पुरुष गृहादि में परम आसक्ति के कारण एवं उसे

त्याग करने में असमर्थ होता हुआ वाक्य द्वारा ही केवल घोषणा करता रहता है, उसकी रक्षा श्रीवृन्दाटवी करती है।

[९५]

संक्रान्तं निजकान्तिमण्डलमुदीक्ष्योरः स्थले तर्कय-
न्नीलां कञ्चुलिकाँ परामपनयासक्त्या प्रिये विस्मिते।
याताया नवकेलिकुञ्जशयनं श्रीराधिकायाः परी-
हासाः सन्तु मुदे ममातिहसितालीभिर्बहिस्तद्रसाः॥

नवकेलिकुञ्ज-शय्या पर विराजमान श्रीराधा के वक्षस्थल में प्रतिबिम्बित निज कान्तिमण्डल का दर्शन कर और एक नील कञ्चुलिका (चोली) का अनुमान करते हुए उसे दूर करने की व्यर्थ चेष्टा के लिए विस्मित प्रिये के (श्रीकृष्ण के) प्रति कुञ्ज के बाहर खड़ी हुई हास्ययुक्ता सखीवृन्दों की जो रसपूर्ण परिहास-वाणी है, वही मेरे लिये अतिशय आनन्द विधान करे।

[९६]

कदाचित् श्रीराधाचरणकमल-द्वन्द-पतितं
कदाचित् श्रीराधामुखकमल माध्वीरस पिबम्।
कदाचित् श्रीराधा कुचकमल कोषद्वय रतं
विलोके तं कृष्णभ्रमरमधिवृन्दाबनमहम्॥

कभी श्रीराधा के चरणकमलों में पतित, कभी श्रीराधा के मुखारिविन्द-मधुरस पान करने में उन्मत्त और कभी श्रीराधा के कुच-कमल कोषद्वद्ध में निमग्न कृष्णभ्रमर के मैं श्रीवृन्दावन में ही दर्शन करूंगा।

[९७]

निर्विद्य कृत्वाद्यखिलात् कदाहं छित्वा समस्ताश्च जगत्यपेक्षाः।
प्रविश्य वृन्दाबनमत्यसङ्ग स्तदीशवार्त्ताभि रहानि नेष्ये॥

समस्त कर्तव्यों से निर्वेद (वैराग्य) प्राप्त कर एवं जगत् की सकल अपेक्षाओं से रहित होकर मैं कब निसङ्ग भाव से श्रीवृन्दावन में प्रवेश कर श्रीवृन्दावनेश्वर एवं श्रीवृन्दावनेश्वरी की वार्ताओं में (गुण-लीलाओं के श्रवण-कीर्त्तन में) दिन यापन करूंगा।

[९८]

कदा श्रीमद्वृन्दावनमिह मृषा स्नेहनिगडं
समुच्छिद्य स्वानां शरणमुपयास्यामि विकलः।
क्वचित् स्वान्तः शल्योद्धरणमभिपश्यन् नहि मना-
गपि श्रौते वर्त्मन्यखिल विदुषामनुमते ॥

मैं कब अपने सम्बन्धियों के मिथ्या स्नेहपाशों को तोड़-कर एवं समस्त विद्वज्जनों के द्वारा अनुमोदित वैदिक मार्ग से कभी भी अपने हृदय के बाण निकलने की कोई भी आशा न देख-कर व्याकुलचित्त से श्रीवृन्दावन की ही शरण ग्रहण करूंगा ?

[९९]

वृन्दावनेशैक पदस्पृहोऽपि महत्तमानां श्रुतभाषितोऽपि।
विदन्नपि स्वार्थविघाति सर्व हाधिक् ! न वृन्दावनमाश्रयामि ॥

श्रीवृन्दावनचन्द्र के चरणकमलों में स्पृहावान होता हुआ भी, महत्-पुरुषों के वचन सुनकर भी एवं सब पदार्थों को स्वार्थ-विध्वंसी (अपना काम बिगाड़नेवाले) जानता हुआ भी श्रीवृन्दा-वन का आश्रय ग्रहण नहीं करता हूं। हाय! मुझे धिक्कार है !

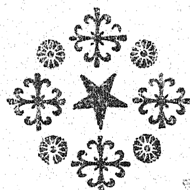
[१००]

सकृदपि यदि दृष्टा हन्त वृन्दाटवि ! त्वं
सकृदपि यदि राधाकृष्ण नामाभ्यधायि ।
सकृदपि यदि भक्त्या सन्नता स्त्वत्प्रपन्ना
ध्रुवमहह तदा मामस्व नोपेक्षिताऽसि ॥

हे मातः वृन्दाटवि ! (जीवन में) एक बार भी यदि आपके दर्शन कर लूं, (जीवन में) एकबार भी यदि श्रीराधा-कृष्ण नाम उच्चारण कर पाऊँ, और (जीवन में) एकबार भी यदि भक्तिपूर्वक आपके शरणापन्न पुरुषों को प्रणाम कर लूं, तो निश्चय ही आप मेरी उपेक्षा नहीं करोगी ।

इति श्रीवृन्दाबन-महिमामृते श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचिते
— प्रथमं शतकम् —

श्रीप्रबोधानन्द-सरस्वती-विरचितश्रीवृन्दावन-महिमामृत के प्रथम शतक का श्रीश्यामदास कृत हिन्दी-अनुवाद समाप्त हुआ ।



। श्रीचैतन्यचन्द्राय नमः ।

॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

श्रीवृन्दावन-महिमामृतं

द्वितीयं शतकम्

[१]

वृन्दारण्ये वरं स्यां कृमिरपि परमो नोचिदानन्द देहो,
रङ्कोऽपि स्यामतुल्यः परमिह न परत्राद्भुतानन्त भूतिः।
शून्योऽपि स्यामिह श्रीहरिभजनलवेनातितुच्छार्थमात्रे,
लुब्धो नान्यत्र गोपीजन रमण पदाम्भोज दीक्षा सुखेऽपि ॥

श्रीवृन्दावन में भले ही मैं कृमि होकर रहूंगा, किन्तु अन्यत्र चिदानन्द देह के लिए भी प्रार्थना नहीं करता हूँ। यहाँ अतुलनीय दरिद्र की भले ही इच्छा करता हूँ, किन्तु और स्थान पर अनन्त विभूति की भी इच्छा नहीं है। भले ही श्रीहरि-भजन-लवशून्य होकर (लवमात्र भी श्रीहरिभजन न कर) अति तुच्छ विषयों में लोलुप होता हुआ ब्रज में वास करूँगा, तथापि श्रीगोपीजन रमण के पादपद्मों की दीक्षा के सुख में भी लुब्ध होकर अन्यत्र नहीं जाऊँगा।

[२]

दिव्यानेक विचित्र पुष्पफल वद्वल्लीतरूणां तति,
दिव्यानेक मयूर कोकिल शुकाद्यानन्द माद्यत्कलाः।
दिव्यानेक सरः सरिद्गिरिवर प्रत्यग्रकुञ्जावली,
दिव्या काञ्चनरत्नभूमिरपि मां वृन्दावनेऽमोहयत् ॥

श्रीवृन्दावन में (जो) दिव्य-दिव्य अनेक विचित्र पुष्प एवं फलशाली वृक्ष-लताओं का समूह है, दिव्य-दिव्य अनेक मोरों, कोकिलाओं एवं शुकादि पक्षियों की (जो) आनन्द-उन्मत्त ध्वनि है, दिव्य-दिव्य अनेक सरोवरों, नदियों, पर्वतों से शोभित (जो) नवीन-नवीन कुञ्जसमूह है एवं दिव्य स्वर्णमयी (जो) रत्नभूमि है—(इन्होंने) मुझे मोहित कर लिया है ।

[३]

भुवः स्वच्छा श्चिन्तामणिभि रतिचित्रै विरचिता,
श्चिदानन्दाभासः फल कुसुम पूर्ण द्रुम लताः ।
खगश्रेणीः सामस्वर कलकलाश्चिद् रस सरित्,
सरांसि श्रीवृन्दावनमनु मनो मे विमृशतु ॥

श्रीवृन्दावन के स्वच्छ एवं अति विचित्र चिन्तामणियों से रचित भूमण्डल को, चिन्मय आनन्द-विस्तार करनेवाले फल-पुष्पयुक्त वृक्षलताओं को, सामवेद के गान की अव्यक्त मधुरध्वनि से कलकलायमान (गुञ्जार करते हुए) पक्षीसमूह को एवं चिन्मय रसयुक्त नदी तथा जलाशयों को मेरा मन स्मरण करे ।

[४]

मरकतमय पत्रै र्हीर पुष्पैः सुमुक्ता
निकर कलिकयाढ्यैः कौरविन्द प्रवालैः ।
बहुविधिरसपूर्णैः पद्मरागैः फलाढ्यै
रविरलमधुवर्षै र्नीलरत्नालि मालैः ॥

जिनके पत्रसमूह मरकतमणिमय हैं, पुष्प समूह हीरा के सदृश हैं, कलिका समूह सुन्दर-सुन्दर मुक्तावत् हैं, प्रवाल (अंकुर) समूह कुरुविन्द मणि की भाँति हैं, अनेक प्रकार के रसों से पूर्ण फल-समूह पद्मरागमणिवत् हैं एवं अविरल मधु-

वर्षी तथा नील रत्नों के समान मधुकर समूह से परिवेष्ठित श्री-वृन्दावन के वृक्षराज शोभित हो रहे हैं।

[५]

अगणित-रवि कोटि-प्रस्फुरद्दिव्य भातिः
सकृदपि हृदि भातैः शीतलानन्दवृष्ट्या।
प्रशमितभवतापैं र्दुर्लभार्थान् दुहद्भिः
परमरुचिर हैमासंख्यवृक्षैः परितम्॥

असंख्य कोटि-कोटि सूर्यप्रभा के समान प्रकाशमान परम रमणीय स्वर्णमय वृक्षों से श्रीवृन्दावन परिपूर्ण है। वह समस्त वृक्षसमूह एकबार मात्र हृदय में स्फुरित होने पर शीतलानन्द की वृष्टि के द्वारा संसार-तापों को प्रशमन कर देता है एवं दुर्ल्लभ पुरुषार्थ को देनेवाला है।

[६]

वृन्दाटव्यामगणित चिदानन्द चन्द्रोज्ज्वलायां
सान्द्रप्रेमामृतरस परिस्पन्दनैः शीतलायाम्।
कूजन्मत्त द्विजकुलवृतानल्पकल्पद्रुमायां
राधाकृष्णावचलविहृती कस्य नो याति चेतः॥

असंख्य चिदानन्द-चन्द्रों की चान्दनी के द्वारा प्रकाशमान निबिड़ प्रेमामृत-रस के परिस्पन्दन(हिलोड़ों) से शीतल, पक्षी-कुल के द्वारा मुखरित एवं अनेक कल्पवृक्षों से शोभित श्रीवृन्दा-वन में निरन्तर बिहार करनेवाले श्रीराधाकृष्ण की ओर किस का चित्त धावित नहीं होता ?

[७]

स्व-पर सकल वस्तुन्यत्र सूर्येन्दु कोटि-
च्छबि विमल लसच्चिद्विग्र हे सद्गुणौघे।

बहिरगतहगन्तु धैर्य्यमालम्ब्य नित्य-
स्मृति रधिवस वृन्दारण्यमन्यानपेक्षः ।।

यहाँ की अपनी व परायी सब वस्तुएँ ही कोटि कोटि सूर्य-चन्द्र की कान्ति युक्त हैं, निर्मल चिन्मय-मूर्ति एवं उत्तम गुणसमूह से पूर्ण हैं। यह नित्य स्मरण रखते हुए बाह्य विषयों की ओर दृष्टिपात न कर धैर्यपूर्वक निरपेक्ष होकर श्रीवृन्दाबन में वास कर।

[८]

देहेऽस्मिन्नतिकुत्सिते त्यज वृथाऽध्यासं यतः संसृति
र्घोरा चिन्तय चिद्घनं निजवपुः सर्वं च वृन्दावने ।
घोराः सन्तु विपत्तिकोटय इह त्वं याहि नो विक्रिया-
मारब्धक्षवमावसैतदथ तन्नाथौ सदा खेलय ।।

घोर संसार के कारण इसी कुत्सित् शरीर में वृथा अध्यास (अहंता-ममता) त्याग कर, अपना शरीर एवं श्रीवृन्दा-बन का समस्त ही चिद्घन जानकर धारणा कर, यहाँ कोटि कोटि घोरतर विपत्तियों के आने पर भी तुम विकारग्रस्त (विचलित) मत होना, जब तक प्रारब्ध नाश नहीं होती इस श्रीवृन्दाबन में ही वास कर एवं नित्य श्रीयुगलकिशोर की लीला का चिन्तन कर।

[९]

दिव्य स्वर्णसुनीलरत्नसुभगं लीला सनालारुणा-
म्भोज श्रीमुरलीधरं पृथुलसद्वेणी सुबर्होज्ज्वलम् ।
सम्बीतोज्ज्वलशोणपीतवसनं कन्दर्पलीलामयं
श्रीवृन्दाबनकुञ्ज एव किमपि ज्योतिर्द्वयं सेव्यताम् ।।

कन्दर्पलीलामय किसी एक अनिर्वचनीय ज्योतिर्मय जोड़ी की श्रीवृन्दाबन के कुञ्जों में ही सेवा कर—उनमें एक दिव्य

स्वर्णवर्ण हैं, अपर सुन्दर इन्द्रनीलमणि वर्ण विशिष्ट हैं; एक के हाथ में नालयुक्त रक्तवर्ण विशिष्ट लीलापद्म एवं दूसरे के हाथों में मोहन-मुरली है; एक के सिर पर विशाल वेणी, एवं दूसरे के सिर पर मोरपुच्छ सुशोभित हैं; परिधान में एक ने उज्ज्वल रक्तवर्ण वसन एवं अपर ने सुन्दर पीताम्बर धारण कर रक्खा है।

[१०]

राधाकृष्णौ परम कुतुकाद्यत्लतापादपानां
चित्वा पुष्पादिकमुरुविधं श्लाघमानौ जुषाते।
स्नानाद्यं यत् सरसि कुरुतः खेलतो यत्खगाद्यैः
वृन्दारण्यं परमपरमं तन्न सेवेत को वा? ॥

परम कौतकवशतः श्रीराधाकृष्ण जहाँ के वृक्ष-लताओं के अनेकविध पुष्पादि चयन कर प्रशंसापूर्वक उन्हें अपनी सेवा में नियोजित करते हैं, जहाँ के सरोवरों में वे स्नानादि करते हैं एवं जहाँ के पक्षियों के साथ वे खेलते हैं—उस सर्वसुन्दर श्रीवृन्दावन का सेवन किस के लिए उचित नहीं है?

[११]

अबाल्यं जलसेचनेन वरणेनावाल निम्मार्णतः
स्वेन श्रीकरपल्लवेन मृदुणा श्रीराधिकामाधवौ।
यान् सम्वर्द्ध्य विवाह्य नव्य कुसुमाद्यलोक्य सम्भ्रमभि
र्मोदिते सुलता तरुणिह तान् वृन्दाबनीयान्नुमः ॥

शिशुकाल से अपने कोमल करपल्लवों के द्वारा आवरण तथा आलवाल निर्माण करते हुए उसमें जल सिञ्चनकर श्रीराधामाधव ने जो समस्त सुमनोहर वृक्ष-लतादि अति यत्नपूर्वक वर्द्धितकर विवाह दिये थे एवं जिनके नवीन नवीन कुसुमादि देखकर दोनों

परिहास-वचन बोलते बोलते आनन्द प्राप्त करते हैं-हम श्रीवृन्दावन के उन लतावृक्षों को नमस्कार करते हैं।

[१२]

द्रवन्ति हरि भावतस्तरण तारणोऽति क्षमा
स्ततो द्रुमतरु प्रथा व्रततयश्च कृष्णव्रताः।
स्फुरन्ति हरिणा इह प्रकट कृष्ण सार प्रथा
मृगाश्च पदमार्गिणः प्रविलसन्ति बृन्दाबने ॥

श्रीवृन्दाबन में श्रीहरि के भाववश द्रवीभूत हो जाने से अन्वर्थनामधारी "द्रुम" विराजमान हैं एवं अपनी तथा दूसरे की रक्षा करने से उनका "तरु" नाम भी यथार्थ ही हुआ है। लता समूह ने कृष्ण-व्रत धारण कर "व्रतती" नाम सार्थक किया है; यहाँ के हरिणों ने श्रीकृष्ण को ही सारात्सार जाना है, अतः "कृष्णसार" नाम को प्राप्त हुए हैं एवं श्रीकृष्ण के चरणचिन्हों का मार्गण (अनुसरण) कर उन्होंने "मृग" नाम की भी सार्थकता सम्पादन की है।

[१३]

अनन्तरुचिमत् स्थलं स्फुरदनन्तवल्लीद्रुमं
मृगद्विजमनन्तकं दधदनन्तकुञ्जोज्ज्वलम्।
अनन्त सुसरित् सरोवरमनन्त रत्नाचलं
स्मराम्यहमनन्त तद्द्वय रसेन वृन्दाबनम् ॥

अनन्त मनोमद स्थलों से युक्त, अनेक वृक्षवल्लरी समूह से शोभित, अनन्त पशु पक्षियों से आकुलित, उज्ज्वलोज्ज्वल अनन्त कुञ्जवाटिकाओं से मण्डित अनन्त सुमनोहर नदी-तड़ागों से युक्त, अनन्तरत्न-पर्वतों से सन्निविष्ट, युगलकिशोर की अनन्त रसमयी लीलाओं के स्थान श्रीवृन्दाबन को मैं स्मरण करता हूं।

[१४]

भ्रात भोगाः सुभुक्ताः क इह न भवता नापि संसार मध्ये
विद्या दानाध्वराद्यैः कति कति जगति ख्याति पूजाद्यलब्धाः।
अद्याहारेऽपि याहच्छिक उरुगुणवानप्यहो सम्वृतात्मा-
श्रीमद्वृन्दावनेऽस्मिन् सततमट सखे सर्वतो मुक्तसङ्गः॥

हे भाई! इस संसार में तुमने क्या क्या सुभोग उपभोग नहीं किया है? इस जगत में विद्या, दान एवं यज्ञादि के द्वारा क्या तुमने बहुत ख्याति पूजादि प्राप्त नहीं की है? आज के अहार में भी यदृच्छालब्ध वस्तु में सन्तोष करते हुए एवं बहुत गुणी होकर भी अपने गुणों को छिपाते हुए इस श्रीवृन्दावन में सर्व-सङ्ग को छोड़कर सर्वदा भ्रमण कर।

[१५]

वृन्दारण्यं त्यजेति प्रवदति यदि कोऽप्यस्य जिह्वां छिनद्मि
श्रीमद्वृन्दावनान्मां यदि नयति बलात् कोऽपि तं हन्म्यवश्यम्।
कामं वेश्यामुपेयां नखलु परिणयायान्यतो यामि कामं
चौर्यं कुर्यां धनार्थं न तु चलति पदं हन्त वृन्दावनान्मे॥

यदि कोई मुझे वृन्दावन त्याग करने को कहे, तो मैं उसकी जिह्वा काट लूंगा; यदि कोई मुझे बलपूर्वक श्रीवृन्दावन से अन्यत्र ले जाये, तो मैं अवश्य ही उसे मार डालूंगा; इच्छा होने पर भले ही मैं वैश्या का सङ्ग कर लूँगा; तथापि विवाह करने के लिये अन्यत्र नहीं जाऊँगा; धन के लिये भले ही यथेष्ट चोरी कर लूँगा तथापि हाय! श्रीवृन्दावन से बाहर एक पद भी नहीं जाऊँगा।

[१६]

परीहासेऽप्यन्याप्रिय कथन मूकोऽति बधिरः
परेषां दोषानुश्रुतिमनु विलोकेऽन्धनयनः।

शिलावन्निश्चेष्टः परवपुषि बाधालव विधौ-
कदा वत्स्याम्यस्मिन् हरि दयित वृन्दाबन बने ॥

परिहास में भी दूसरे को अप्रिय (बुरा) कहने में गूंगे के समान होकर, दूसरे के दोष सुनने में बहरे के समान होकर, दूसरेके दोष देखने में अन्धे के सदृश होकर एवं दूसरेके शरीरको जिससे लेशमात्र भी कष्ट न पहुंचे, इस विषय में पत्थरवत् निश्चेष्ट होकर कब मैं हरि के प्यारे इस श्रीवृन्दाबन में वास करूंगा ?

[१७]

सोढ्वाऽपि दुःखानि सुदुःसहानि त्यक्त्वाऽप्यहो जातिकुलादिकानि ।
भुक्त्वा श्वपाकैरपि थुत्कृतानि वृन्दाटवीवासमहं करिष्ये ॥

अति दुसह दुख समूह को सहन करके भी, जाति कुलादि को त्याग कर भी एवं चाण्डाल का थूका हुआ (झूठा) आहार खाकर भी मैं श्रीवृन्दाबन वास करूंगा।

[१८]

नाहं गमिष्यामि सतां समीपतो नाहं वदिष्यामि निजं कुलादिकम् ।
नाहं मुखं दर्शयितास्मि कस्यचित् वृन्दाटवी वास कृतेऽति साहसी ॥

सज्जनों के समीप भी नहीं जाऊँगा (अथवा सत्पुरुषों से दूर नहीं जाऊंगा) मैं अपने कुलादि का परिचय नहीं दूंगा । श्रीवृन्दाबन के वास करने में अति साहसी होकर अन्य किसी को मुख नहीं दिखलाऊंगा ।

[१९]

सर्वाभास ज्योतिषोऽनन्तपारस्यान्तर्ज्योति वैष्णवानन्द सान्द्रम् ।
तस्याप्यन्तर्ज्योतिः रस्त्यप्रेमयानन्दास्वाद तत्र वृन्दाटवीयम् ॥

अनन्तपार सर्व उद्भासी ब्रह्मज्योति की आन्तर-ज्योति (सार) आनन्दसान्द्र विष्णुधाम (परव्योम) है; उसका भी

आन्तरतर ज्योति है—अपरिमित आनन्द का आस्वादनमय व्रज-मण्डल; उसका भी आन्तरतम (सारात्सार) यह श्रीवृन्दाटवी है।

[२०]

किं क्रीड़ैव शरीरिणी स्मरकला किं देहिणी किं रतिः
स्वाभा मूर्त्तिमती किमद्भुतमनो जन्मास्त्र विद्यैव वा।
किंवा जीवनशक्तिरेव सतनुः श्यामस्य न ज्ञायते
सा राधा विजरीहरीति हरिणा वृन्दावनेऽर्हनिशम्॥

यह क्या देहविशिष्टा कीड़ा ही है या शरीर धारण किये हुए कोई काम-कला ? सुदीप्तियुक्त मूर्त्तिमती यह रति ही है क्या ? या अद्भुत कामास्त्र विद्या ही प्रादुर्भूत हुई है ? अथवा देह धारण कर श्रीश्यामसुन्दर की जीवन शक्ति ही प्रकट हुई है—यह कुछ भी तो नहीं जाना जा सकता। हाँ ! वह श्रीराधा ही श्रीहरि के सहित निशिदिन श्रीवृन्दावन में बिहार कर रही हैं।

[२१]

सर्वप्रेमरसैक बीज विलसद् विप्रुड् महामाधुरी-
पूर्ण स्वर्ण सुगौरमोहन महाज्योतिः सुधैकाम्बुधीन्।
एकैकाङ्गत उन्मद स्मरकला रङ्गान् दुहन्त्यद्भुतान्
वृन्दाकानन संप्लवान् हृदि मम श्यामप्रिया खेलतु॥

श्रीवृन्दावन को प्लावन करने वाले एवं सर्व-प्रेमरस के मुख्य बीजरूप बिन्दुओं से भरपूर, महामाधुर्य-पूर्ण स्वर्ण-सदृश गौरमोहन महाज्योति-पूर्ण अमृत-रस के एकमात्र समुद्र के समान अद्भुत उन्मत्त कामकला-रंग समूह को प्रत्येक अङ्ग से प्रकाशित करती हुई श्रीश्यामप्रिया मेरे हृदय में बिहार करें।

[२२]

लोलद्वेण्यः पृथुसुजघनाः क्षाममध्याः किशोरीः
संवीत श्रीस्तन मुकुलयो रुल्लसद्धार यष्टीः।

नानादिव्याभरणवसनाः स्निग्धकाश्मीर गौरीः
वृन्दाटव्यां स्मर रसमया राधिका किङ्करी स्ताः ॥

जिनकी वेणियाँ झूल रही हैं जिनकी जङ्घा विशाल हैं, कटिदेश क्षीण हैं एवं जिनके आवृत सुन्दर मुकुल-स्तनद्वय के बीच हार शोभित हैं,जिनकी किशोर अवस्था है, जो अनेक दिव्य वसन भूषणों से सुसज्जित हैं, जो स्निग्ध कुङ्कुमवत् गौराङ्गिणी एवं रसमयी हैं—उन श्रीराधाजी की किङ्करीवृन्दका स्मरणकरो।

[२३]

आः कीदृक् पुण्यराशेः सुपरिणतिरियं केयमाश्चर्यरूपा
कारुण्यौदार्यलीला स्फुरतिभगवतः कोनुलाभोऽद्भुतोऽयम् ।
यद्वा नाश्चर्यमेतन्निज सहज गुण मोहित श्रीविधीशा-
द्यत्युच्चै र्वस्तु वृन्दावनमिदम वनौ यत् स्वयं प्रादुरास्ते ॥

आहा ! यह कैसे पुण्यों की शेष परिणति है ? आहा ! यह क्या भगवान् की आश्चर्यमय करुणा एवं उदारता की लीला स्फूरित हो रही है ? आहा ! कैसा अद्भुत लाभ ही है ! अथवा यह आश्चर्य का कुछ विषय नहीं; क्योंकि जो अति उत्कृष्ट वस्तु है एवं जिसमें लक्ष्मी, ब्रह्मा, शिवादि देवगण भी मोहित होजाते हैं, वह भगवान् का स्वकीय सहज गुण ही श्रीवृन्दाबन रूपमें पृथ्वी पर प्रादुर्भूत हुआ है !!

[२४]

रटन् वृन्दारण्येऽत्यविरत मटं स्तत्र परितो—
नटन् गायन् प्रेम्णा पुलकितवपु स्तत्र विलुठन् ।
त्रुटत् सर्वग्रन्थिः स्फुरदति रसो पास्ति घटिमा
कदाहं धन्यानां मुकुटमणिरेषोऽस्मि भविता ॥

निरन्तर गुणोंका वर्णन करता हुआ, श्रीवृन्दाबन में इतस्ततः भ्रमण करते करते नाचता गाता हुआ, प्रेममें पुलकिताङ्ग होकर

ब्रजरज में लुण्ठन पूर्वक जब ग्रन्थियोंको तोड़कर एवं स्फूर्ति-प्राप्त अत्युत्तम रसमयी उपासना की निपुणता को प्राप्तकर कब मैं धन्य शिरोमणि होऊँगा ?

[२५]

सौन्दर्यादि महाचमत्कृतिनिधी दिव्यौ किशोरौ महा-
गौरश्यामतनुच्छवी निशिदिवा यत्रैव चाक्रीड़तः।
यत्रैवाखिल दिव्य कानन गुणोत्कर्षोऽति काष्ठां गत
स्तद्वृन्दाविपिनं कदानु मधुर प्रेमानुवृत्त्या भजे ॥

जहाँ सौन्दर्यादि के चमत्कार का समुद्र है एवं गौरश्याम-विग्रह महाकान्तिशाली दिव्य युगलकिशोर निशिदिन क्रीड़ा कर रहे हैं; जहाँ समस्त अप्राकृत बनोंका गुण-समूह चरम काष्ठाको प्राप्त हुआ है—उस श्रीवृन्दाबन को मैं कब मधुर प्रेमकी अनुवृत्ति के द्वारा भजन करूँगा ?

[२६]

अनादौ संसारे कति नरकभोगा न विहिताः
कियन्तो ब्रह्मेन्द्राद्यतुल सुखभोगाश्च न्यक्कृताः।
तदास्मिन्नेकस्मिन् वपुषि सुखदुःखे न गणयन्
सदैव श्रीवृन्दावनमखिलसारं भज सखे ॥

हे सखे ! इस संसार में कितने नरक भोग नहीं किये हैं ? कितने कितने ब्रह्मा, इन्द्र आदि के अतुल सुखभोगादि का तिरस्कार नहीं किया है ? अतएव इस वर्तमान एक शरीर के सुख-दुख को न गिनता हुआ सदा परमसार श्रीवृन्दाबन में वासकर।

[२७]

श्रीवृन्दाबनवासि पादरजसा सर्वाङ्गमागुण्ठयन्
श्रीवृन्दाबनमेकमुज्ज्वलतमं पश्यन् समस्तोपरि।

श्रीवृन्दावनमाधुरीभिरनिशं श्रीराधिकाकृष्णयो
रप्यावेश मनुस्मरन्नधिवस श्रीधाम वृन्दावनम् ॥

श्रीवृन्दावन-वासियों की चरण-धूलि में सर्वाङ्गों को धूसरित करके एकमात्र उज्ज्वलतम श्रीवृन्दावन को ही सर्वोपरि जानते हुए, श्रीवृन्दावन के माधुर्य में सर्वदा श्रीराधाकृष्ण का आवेश अनुस्मरण करते-करते श्रीधाम वृन्दावन में ही वास कर।

[२८]

वृन्दाकानन काननस्य परमा शोभा परातः परा
नन्द त्वद्गुण वृन्दमेव मधुरं येनानिशं गीयते।
हा वृन्दावन कोटि जीवनमपि त्वत्तोऽतितुच्छं यदि-
ज्ञातं तर्हि किमस्ति यत्तृणकवच्छक्येत नोपेक्षितुम् ॥

हे श्रीवृन्दावन ! आपके वन की शोभा सर्वोत्कृष्ट है, हे परानन्द ! आपके मधुर गुणों को जो निशिदिन गान करता है एवं हे वृन्दावन ! जो कोटि जीवन भी आपके सामने तुच्छ जानता है,फिर उसके लिए संसार में ऐसी कौन सी वस्तु है जिस की वह तृण के समान उपेक्षा नहीं कर सकता ?

[२९]

स्वात्मेश्वर्या समाद्य प्रणयरस महामाधुरी सार मूर्त्या
कोऽपिश्यामः किशोरः कनकवररुचा श्रीकिशोर्य्या कयापि।
क्रीड़त्यानाद सारान्तिम परम चमत्कार सर्वस्वमूर्त्ति
र्नित्यनङ्गोत्तरङ्गै र्यदधि भज तदेवाद्य वृन्दावनं भोः ॥

आनन्द सारके परमकाष्ठाभूत परम चमत्कार की सर्वस्व-मूर्त्ति कोई एक श्यामकिशोर नित्य अनङ्ग-तरङ्गों में उन्मत्त हो कर मेरी प्राणेश्वरी आद्य प्रणय-रस महामाधुर्यसार-मूर्त्ति किसी

स्वर्णकान्ति विशिष्ट किशोरी के साथ जहाँ नित्य क्रीड़ा करता है, आज ही से उसी श्रीवृन्दावन का भजन कर।

[३०]

नव कनक चम्पकावलि दलितेन्दीवर सुवृन्द निन्दित श्रि।
वृन्दावन नवकुञ्जे किशोरमिथुनं तदेव भज रसिकम्॥

श्रीवृन्दावन के नवीन कुञ्जों में उन रसिक युगलकिशोर की चिन्ता कर—जिनमें से एक की देहकान्ति नूतन स्वर्ण तथा चम्पकावलि को निन्दित करती है और दूसरे की देह-ज्योति दलित (प्रफुल्लित) नीलकमल की शोभा को तिरस्कार करती है।

[३१]

परिचर चरणसरोजं तद् गौरश्याम रसिक दम्पत्योः।
वृन्दाबन नवकुञ्जावलिषु महानङ्ग विह्वलयोः॥

श्रीवृन्दावन के नवीन कुञ्जों में जो महानङ्ग से विह्वल हो रहे हैं, उन्हीं गौरश्याम रसिकयुगल के चरण-कमलों की परिचर्या कर।

[३२]

अति कन्दर्प रसोन्मदमनिशं विवर्द्धिष्णु तन्मिथः प्रेम।
घन पुलक गौरलीलाकृति नव मिथुनं निकुञ्जमण्डले स्मर॥

कन्दर्परस में अति उन्मत्त उस युगलकिशोर का पारस्परिक प्रेम नित्य ही वर्द्धित होता है। घन पुलकावलि से शोभित उस गौर-नील कान्ति विशिष्ट नवीन जोड़ी की निकुञ्जमण्डल में चिन्ता कर।

[३३]

पूर्ण प्रेमानन्द-चिच्चन्द्रिकाब्धेर्मध्ये द्वीपं किञ्चिदाश्चर्यरूपम्।
तत्राश्चर्याभाति वृन्दाटवीयं तत्राश्चर्यौ गौरनीलकिशोरौ॥

पूर्ण प्रेमानन्द-दिव्य ज्योत्स्ना के समुद्र में एक आश्चर्यरूप

द्वीप है, फिर उसमें यह वृन्दाटवी और एक आश्चर्य है, उसमें भी परम आश्चर्यरूप यह गौर-नील युगलकिशोर हैं।

[३४]

धन्यो लोके मुमुक्षु र्हरिभजनपरो धन्य धन्य स्ततोऽसौ
धन्यो यः कृष्णपादाम्बुजरति परमो रुक्मिणीश प्रियोऽतः।
याशोदेय प्रियोऽतः सुवलसुहृदतो गोपकान्ताप्रियोऽतः
श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्यति रस विवशाराधकः सर्वमूर्ध्नि ।।

इस पृथ्वी पर जो मुमुक्षु हैं वे धन्य हैं, जो हरिभजन-परायण हैं वे धन्य-धन्य हैं। उनसे उत्कृष्ट वे हैं, जो श्रीकृष्ण के चरणकमलों में परमासक्त हैं। उनसे अधिक रुक्मिणी-वल्लभ—श्रीकृष्ण के भक्त हैं, उनसे श्रीयशोदानन्दन—श्रीकृष्ण के भक्तवृन्द अधिक प्रशंसनीय हैं; उनसे अधिक धन्य सुवल सखा—श्रीकृष्ण के प्रियगण हैं, उनसे अधिक गोपीवल्लभ—श्रीकृष्ण के भजन परायणगण धन्य हैं,किन्तु श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी के परमरस विवश श्रीकृष्ण-आराधक सबके मुकुटमणि हैं।

[३५]

एकं सख्यापि नो लक्षितमुरसि लसन्नित्यतादात्म्यकान्तं
तद् दृश्यं दूरतोऽन्यदव्रतति नवगृहेऽन्यत्तु तन्मर्मशर्म।
अन्यद् वृन्दाबनान्त विहरथपरं गोकुले प्राप्तयोगं
विच्छेद्यन्यत्तदेवं लसति बहुविधं राधिका कृष्णरूपम् ।।

श्रीराधाकृष्णरूप अनेक भावों से विलास-परायण होकर विराजमान हैं। एक अवस्था यह है—सखीगणों से भी अलक्षित भाव से कान्ता एवं कान्त एक दूसरे को गाढ़ आलिङ्गन पूर्वक नित्य तादात्म्य-भाव प्राप्त हैं; अपरावस्था है—सखीगणों के द्वारा दूर से दृश्यमान होकर लता-निर्मित नवीन मण्डप में मिलन और एक अवस्था (निकुञ्ज में) है—दोनों का परिहासयुक्त मङ्गल

वाक्यों में निरत होना; अन्त्यावस्था है—वृन्दावन में नित्य विहार शील, और अवस्था है— (कुञ्जों से गोष्ठ में एवं गोष्ठ से कुञ्जों में गमनागमन करते हुए) गोकुल में मिलन;और प्रकाश में(अवस्था में) वे (माथुर) विरह दशा प्राप्त हैं। (एवं तदनन्तर समृद्धिमान् सम्भोगयुक्त मिलन है।—श्रीबृहद्भागवतामृत द्रष्टव्य)।

[३६]

नित्योत्तुङ्गदनङ्ग रङ्ग विलसल्लीलातरङ्ग सदा।
राधामानसदिव्यमीनिलयं तद्वक्त्रचन्द्रोच्छ्लितम्।
तत् कन्दर्पसुमन्दरेण मथितं सख्यक्षि पीयूषदं
कञ्चिच्छ्याम रसाम्बुधि भज सखे ! वृन्दाटवी-सीमनि ॥

हे सखे ! श्रीवृन्दावनवासी उन अनिर्वचनीय श्याम-रस-समुद्र का भजन कर—उस श्यामरस-समुद्र में नित्य ही काम-रङ्ग-विलास लीलामय उत्तुङ्ग तरङ्गें प्रकाशित हो रही हैं, उसमें श्रीराधा का मनरूप दिव्य मत्स्य निरन्तर वास करता है। वह श्रीराधा-मुख-चन्द्र के द्वारा उच्छलित होता है, श्रीराधा के काम-रूप सुमन्दर पर्वत के द्वारा वह मथित होता है एवं वह सखियों के नेत्रों को अमृत दान करनेवाला है।

[३७]

श्यामप्राणमृगैकखेलन वनश्रेणी सदा श्यामलोत्
खेलन्मानसमीन दिव्यसरसी श्यामालि सत्पद्मिणी।
श्यामानङ्ग सुतल्प हृच्छिशिरताकारि स्फुरच्चन्द्रिका
श्यामानन्यसुनागरेण विहरत्येका मम स्वामिनि ॥

श्यामसुन्दर के प्राणरूप मृग की एकमात्र क्रीड़ास्थली, उज्ज्वल रस में क्रीड़ा-परायण मानसरूप मीन के लिए दिव्य सरोवर के समान, श्यामरूप भ्रमर के लिए पद्मिणीरूपा, श्याम

के कामतप्त-हृदय को शीतलता विधान करने वाली उज्ज्वल चन्द्रिका सदृश मेरी स्वामिनी अकेली श्यामा (श्रीराधा) ही अतुलनीय श्याम सुनागर के साथ बिहार करती हैं।

[३८]

श्रीमद्वृन्दाकानने रत्नवल्लीवृक्षै श्चित्र ज्योतिरानन्द पुष्पैः।
कीर्णे स्वर्ण स्थल्युदञ्चत् कदम्बच्छायायां नश्चक्षुषी गौरनीले ।।

रत्नमय लता-वृक्षों से मण्डित विचित्र ज्योत्सना विस्तार करने वाले आनन्दमय पुष्पों से व्याप्त श्रीवृन्दावन में स्वर्णस्थली से शोभित कदम्ब की छाया में (विराजमान) गौर-नील वपु-धारी श्रीयुगलकिशोर ही हमारे नेत्रों में नित्य विराजमान रहें।

[३९]

श्रीवृन्दाकाननेऽत्यद्भुतकुसुम लसद् रत्नवल्ली निकुञ्ज-
प्रासादे पुष्पचन्द्रातपचयरुचिरे पुष्पपल्यङ्क तल्पे।
राधाकृष्णौ विचित्र स्मर समर कलाखेलनौ वीक्ष्य वीक्ष्या
नन्दाद्विह्वलं संलुठदवनितले वन्द्य तामालिवृन्दम् ।।

श्रीवृन्दावन में अत्यन्त अद्भुत कुसुमों से शोभित रत्नमय लता-निकुञ्ज-प्रासाद (महल) में पुष्पमय चन्द्रातप समूह के द्वारा मनोहर पुष्प-पालङ्क की शय्या पर विचित्र कामयुद्ध में खेलनपरायण श्रीराधाकृष्ण को देख देख कर आनन्द से विह्वल होकर पृथ्वी पर लोट-पोट होने वाली सखीवृन्द की वन्दना करनी चाहिये।

[४०]

श्रेष्ठद्वन्द प्रसादाभरणवर पट स्रग् नवाभीरबाला-
मालालङ्कार कस्तूर्य्यगुरु घुसृण सद्गन्धताम्बूल वस्त्रैः।

वाद्यैः सङ्गीतनृत्यैरनुपम कलया लालयन्तीः सतृष्णा
राधाकृष्णावखण्ड स्वरस विलसितौ कुञ्जवीथ्यामुपैमि ॥

प्रियतम युगलकिशोर के प्रसादी अलङ्कार, श्रेष्ठ वस्त्र माल्यादि से भूषित नवीना गोपकुमारीवृन्द माला, अलङ्कार, कस्तूरी, अगुरु, कुङ्कुम, मनोमदगन्ध, ताम्बूल, वस्त्र आदि समाहरण के द्वारा एवं अनुपम ताल-लययुक्त वाद्य तथा नृत्यादि के द्वारा निकुञ्ज-विलासी अखण्ड-स्व-रस विलासी श्रीराधाकृष्ण जोड़ी की जो सतृष्णभाव से सेवा कर रही हैं, मैं उनकी शरणापन्न होता हूँ।

[४१]

काश्चिच्चन्दनघर्षिणीः सघुसृणं काश्चित् स्रजोग्रन्थतीः
काश्चित्केलिनिकुञ्जमण्डनपराः काश्चिद्वहन्ती जलम् ।
काश्चिद्दिव्यदुकूलकुञ्चनपराः संगृह्णतीः काञ्चनाऽ
लङ्कारं नवमन्नपानविधिषु व्यग्राश्चिरं काश्चन ॥

कोई कोई गोपबाला उत्तम कुङ्कुम सहित चन्दन घर्षण कर रही हैं, कोई माला रचने में संलग्न हैं, कोई कोई केलिनिकुञ्ज सुसज्जित कर रही हैं तो कोई जल लारही हैं, कोई नवीन नवीन अलङ्कारों को संग्रह कर रही हैं, और कोई कोई व्यग्रचित्त से खाने पीने आदि की चेष्टा में बहुत देर से लगी हुई हैं।

[४२]

ताम्बूलोत्तमबीटिकादिकरणे काश्चिन्निविष्टा नवाः
काश्चिन्नर्त्तनगीत-वाद्यसुकला सामग्रि-सम्पादिकाः ।
स्नानाभ्यङ्गविधौ च काश्चन रताः सम्बीजनाद्यै सदा
काश्चित् सन्निधिसेवनातिमुदिताः काश्चित् समस्तेक्षिकाः ॥

कोई कोई नवीना गोपबाला उत्तम ताम्बूलवीटिका आदि के निर्माण करने में संलग्न हैं, कोई नृत्य, गीत, वाद्यादि की उत्तम उत्तम कला विद्या दिखानेवाली वस्तुओं का आयोजन कर रही हैं, और कोई कोई स्नान-उबटनादि की सामग्री संग्रह कर रही हैं, और कोई पंखा हाथ में लेकर पास में खड़ी होकर श्रीअङ्ग की सेवा के लिये अतिशय मुदित हो रही हैं तथा और कोई सब विषयों की देखभाल कर रही हैं।

[४३]

काश्चित् स्वप्रिययुग्मचेष्टितदृशः स्तब्धाः स्वकृत्ये स्थिताः
क्षिप्त्वाऽन्यालिप्रवर्त्तिता दयितयोः काश्चित् सुखेला पराः।
इत्थं विह्वल-विह्वलाः प्रणयतः श्रीराधिका कृष्णयोः
दासीरद्भुतरूपकान्तिवयसो वृन्दावनेऽन्वीयताम् ॥ (विशेषकम्)

कोई कोई अपने प्रियतम युगलकिशोर की चेष्टा को देख कर अपने कार्य को भूल चुकी हैं, और कोई गोपी अपर सखी के अनुयोग से अपने कार्य में प्रवृत हो रही हैं एवं प्यारे युगल-किशोर की सुन्दर क्रीड़ा में सहयोग कर रही हैं। इस प्रकार श्रीराधाकृष्ण के अत्यन्त प्रेम में विभोर अद्भुतरूप-कान्ति-अवस्थायुक्त सखियों का श्रीवृन्दावन में अन्वेषण कर।

[४४]

एकं चित्रशिखण्डकूड़मपरं श्रीवेणीशोभाद्भुतं
वक्षश्चन्दनचिह्नमेकमपरं चित्र स्फुरत् कञ्चुकम्।
एकं रत्नविचित्रपीतवसनं जंधान्तवस्त्रोपरि
भ्राजद्रत्न सुचित्र श्रोण वसनेनान्यच्च संशोभितम् ॥

एक तो अद्भुत मोरपुच्छ का चूड़ा धारण किये हुए है, दूसरे के सिर पर श्रीवेणी की चमत्कारी शोभा है; एक का

वक्षस्थल चन्दन-चित्रित है, एवं दूसरे के वक्षस्थल पर विचित्र काञ्चुलि शोभित है; एक विचित्र पीताम्बरधारी है एवं दूसरा जङ्घा पर्यन्त विस्तृत वस्त्र के ऊपर बहुरत्नमय विचित्र लाल वस्त्र से सुशोभित है।

[४५]

इत्थं दिव्य विचित्रवेश मधुरं तद् गौरनीलं मिथः
प्रेमावेश हसत् किशोर मिथुनं दिग्व्यांपि चित्रच्छटम् ।
काञ्ची नूपुरनाद रत्नमुरली, गीतेन सं मोहयत्
श्रीवृन्दाबन चिद्घन स्थिरचरं रङ्गींमहाश्रीमति ॥

इस प्रकार दिव्य विचित्र वेश-माधुर्य से मण्डित, चारों दिशाओं में विचित्र कान्ति विस्तार करते हुए गौर-नील वपुधारी वे युगलकिशोर—जो परस्पर प्रेमवेश में हास्ययुक्त हैं, महा-सौन्दर्यशाली रङ्गमें श्रीवृन्दावन की स्थावर-जङ्गमात्मक चिद्घन वस्तु मात्र को ही काञ्ची, नूपुर झन्कार में एवं मुरली के मनोहर गीत में सम्यक प्रकार से मुग्ध करते हुए विराजमान हैं।

[४६]

अन्वालीमुखशब्दचे मणिमये मीलन्मृदङ्गध्वनौ
प्रोत्सःर्यैव प्रविष्टवज् जवनिकांमुत्कीर्य पुष्पाञ्जलीम् ।
अत्याश्चर्य सनृत्य हस्तक महाश्चर्याङ्ग दृगूभङ्गिमोन
त्तुङ्गानङ्गरसोत्सरं भजति मे प्राणद्वयं कः कृती ॥ (युग्मकम्)

उसी मणिमय रङ्गमञ्च पर सखीगणों के मुखोच्चारित शब्द तथा मृदङ्ग ध्वनि के होते ही परदे को दूर कर पुष्पाञ्जलि विकीर्ण करते करते प्रवेशपूर्वक अतीव आश्चर्यजनक नाना प्रकार से हस्तभङ्गी सहित नृत्य करते हुए तथा महाश्चर्यमय अङ्गों व नेत्रों की भङ्गी के द्वारा सुमहान् काम-रसोत्सव का

विधान करने वाले मेरे प्राणप्रियतम युगलकिशोर का भजन कोई पुण्यात्मा ही करता है।

[४७]

अनन्तरति मत् प्रियच्छवि विलास सम्मोहनं
महारसिकनागराद्भुत किशोरयोस्तद्द्वयम्।
विचित्ररतिलीलया नवनिकुञ्ज पुञ्जोदरे
स्मरामि विहरन्महाप्रणय घूर्णिताङ्गं मिथः॥

अनन्त रतिशाली मनोहर कान्तियुक्त तथा विलाससम्मोहित उन महारसिक नागर अद्भुत श्रीयुगलकिशोर के विचित्र रति-लीलासहित नित्य नवीन निकुञ्जोंमें बिहार परायण महाप्रीतिरस में घूर्णित विग्रह-युगल को स्मरण करता हूं।

[४८]

कदा कनक चम्पकद्युति विनिन्दितेन्दीवर-
वरं नव किशोरयोर्द्वय मगाधभावं मिथः।
पुरः स्फुरतु मन्मथ क्षुभितमूर्त्ति वृन्दाटवीं
ममाधिवसतो महासरस दिव्य चक्षुर्युजः॥

महासरस दिव्य नेत्रधारी तथा वृन्दाबनबासी स्वर्णचम्पक कान्ति एवं नीलकमल को निन्दित करने वाले रूपविशिष्ट नव-किशोर-दम्पती की एक दूसरे के प्रति अगाध भावयुक्त कामदेव-विमोहित मूर्त्त मेरे सन्मुख कब स्फुरित होगी ?

[४९]

प्रेमानन्दोज्ज्वल रसमय ज्योतिरेकार्णवान्त-
स्तादात्म्येन स्फुरतु वहुधाश्चर्यं वृन्दावनं मे।
कुञ्जे कुञ्जे मधुरं मधुरं तत्र खेलत्-किशोर
द्वन्द्वं गौरासित रुचि मन स्तद्द् रसार्हं क्रियान्मे॥

प्रेमानन्द के उज्ज्वल-रस विशिष्ट ज्योतिपूर्ण किसी एक अनिर्वचनीय समुद्रगर्भस्थित आश्चर्यमय श्रीवृन्दाबन, उसी प्रकार के ज्योतिर्मय समुद्र के साथ तादात्म्य-भाव को प्राप्त होकर अनेक प्रकार से मेरे निकट स्फुरित हो एवं उसके प्रत्येक कुञ्ज में मधुरातिमधुर लीला-विहारी गौर-श्याम श्रीयुगलकिशोर मेरे मन को उस रस में आविष्ट कर दें—यही प्रार्थना है।

[५०]

दविष्ठे य स्तिष्ठे दति कुकृतिनिष्ठः कुविषये
सकृद् वृन्दाटव्या स्तृणकमपि वन्देत सुकृती।
स तत्प्राणस्योच्छृङ्खल निखिलशक्ते- करुणया
ध्रुवं देहस्यान्ते हरिपदमलभ्यञ्च लभते॥

दूर देश में रहते हुए भी, कुविषयों में कुकर्म परायण होते हुए भी यदि कोई सुकृती एकबार भी श्रीवृन्दाबन के क्षुद्र तृण की भी वन्दना करे, तो देहान्त पीछे वह उन तृणादि के प्राण-स्वरूप, असीम निखिल-शक्ति-पूर्ण श्रीराधाकृष्ण की कृपा से दुर्लभ श्रीहरि के चरणकमलों को प्राप्त कर लेता है।

[५१]

कुवेराणां कोटिर्हसति धनसम्पत्तिभि रहो
तिरस्कुर्याद्धिर्यानपि सुरगुरून् बुद्धि विभवैः।
अशोच्यः स्त्रीपुत्रादिभि रसम ईड्यो हरिरसा-
च्छुक-प्रह्लादाद्यै रतिकृदिह वृन्दावन वने॥

इस श्रीवृन्दावन में प्रीति करने वाला पुरुष, धन सम्पत्ति के द्वारा कोटि कुवेरों का भी उपहास करता है, बुद्धि-सम्पत्ति के द्वारा देवताओं के गुरु वृहस्पति का भी तिरस्कार कर सकता है; और स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बी भी उसके लिये शोक नहीं करते हैं;

वह श्रीहरि-रस विषय में श्रीशुक-प्रह्लादादिकों द्वारा भी प्रशंसनीय है।

[५२]

त्यक्त्वा सर्वान् गृहद्वार सकल गुणालङ्कृत स्त्रीसुतादीन्
सर्वात्रात्यन्तसम्माननमथ महतः सत्कुलाचारधर्मान्।
मातापित्रो र्गुरुणामपि च नहि मनागाग्रहैः कोमलात्मा
यो यायादेव वृन्दावनमयमखिलैः स्तूयते धन्यधन्यः॥

गृह-द्वार स्वर्ण गुणयुक्त स्त्री पुत्रादि सबको त्यागकर एवं सर्वत्र महान सम्मान तथा बड़े बड़े सत्कुलाचार धर्मादि को तिलाञ्जली देकर माता पिता एवं गुरुजनों के आग्रह में ज़रा भी कोमल चित्त न होकर जो श्रीवृन्दाबन जा सकता है, सब लोक उसकी प्रशंसा करते हैं एवं उसे धन्यवाद देते हैं।

[५३]

नो शृण्वन् नैव गृह्णन् सकल तनुभृतां क्वापि दोषं गुणं वा
वृन्दावनस्थ सत्त्वान्यखिल गुरुधिया सं नमन् दण्डपातैः।
त्यक्ताशेषाभिमानो निरवधि परमाकिञ्चनः कृष्णराधा-
प्रेमानन्दाश्रु मुञ्चन् निवसति सुकृती कोऽपि वृन्दावनान्तः॥

समस्त जीवों के दोषों तथा गुणों को न कहीं सुनता हुआ और न ही ग्रहण करता हुआ, सब वृन्दाबनवासी प्राणियों में गुरु बुद्धि से दण्डवत् प्रणाम करता हुआ, सब अभिमान छोड़कर एवं निरन्तर परम निष्किञ्चन भाव से श्रीराधाकृष्ण के प्रेमानन्द में अश्रु बहाता हुआ कोई पुण्यात्मा ही श्रीवृन्दावन में वास करता है।

[५४]

क्रन्दनार्त्तस्वरेण क्षितिषु परिलुठन् सं नमन् प्राणबन्धुं
कुर्वन् दन्ते तृणान्यादधदनुकरुणा दृष्टये काकु कोटिः।

तिष्ठन्नेकान्त वृन्दाविपिन तरुतलेष्वव पानौ कपोलं
न्यस्याश्रुण्येव मुञ्चन्नयति दिननिशां कोऽपि धन्योऽस्त्यनन्यः ॥

क्रन्दन एवं आर्त्तस्वर से भूमि पर लोट पोट होते होते, प्राणबन्धु को दण्डवत प्रणाम करते करते, दांतों में तृण धारण कर कृपाकटाक्ष के लिए कोटि कोटि दीन वचन उच्चारण करता हुआ श्रीवृन्दावन के वृक्ष-वृक्ष के नीचे एकान्तवासी होकर हाथ में कपोल रखकर आँसू बहाता हुआ जो कोई दिन-रात व्यतीत करता है, वह अति अनन्य एवं धन्य है।

[५५]

मुञ्चन् शोकाश्रुधारां सतत मरुचिमान् ग्रासमात्राग्रहेऽपि
क्षिप्तो बद्धो हतो वा गिरिवदविचलः सर्वसङ्गैर्विमुक्तः।
नैष्किञ्चन्यैक काष्ठां गत उरुतरयोत्कण्ठया चिन्तयन् श्री-
राधाकृष्णाङ्घ्रि पङ्केरुहदल सुषमां कोऽपि वृन्दावनेऽस्ति ॥

निरन्तर शोकाश्रु बहाता हुआ, एक ग्रास मात्र आहार में भी अरुचिवाला, उन्मत्त, बद्ध, हत तथा पर्वत की भांति अचल एवं सर्वसङ्ग रहित, परम निष्किञ्चनता की पराकाष्ठाप्राप्त अत्यन्त उत्कण्ठा से श्रीराधाकृष्ण के चरणारविन्दों की शोभा का जो ध्यान करता है, ऐसा कोई (भाग्यवान पुरुष भी) श्री-वृन्दावन में विराजमान है।

[५६]

मालां कण्ठेऽपय सुललितं चन्दनं सर्वगात्रे
ताम्बूलं प्राशय कुरु सुखं साधु सम्वीजनेन।
व्यत्याश्लेपात् सुखशायितयो ललयन्नङ्घ्रि मित्थं
राधाकृष्णौ परिचर रहः कुञ्जशय्यामुपेतौ ॥

श्रीराधाकृष्ण निर्ज्जन कुञ्जशय्या पर विराजमान हैं—

उनके कण्ठ में सुगन्धित माला अर्पण कर, उनके सर्वाङ्गों पर सुललित चन्दन लेपन कर, श्रीमुख में ताम्बूल प्रदान कर एवं मृदु मधुर बीजने के द्वारा उन्हें सुखी कर। वे परस्पर गाढ़ आलिङ्गनपूर्वक सुख से शयन कर रहे हैं—उनके चरण-कमलों की सेवा कर—इस प्रकार श्रीयुगलकिशोर की परिचर्या कर।

[५७]

राधाकृष्णौ रहसि लतिकामन्दिरे सूपविष्टौ
रत्याविष्टौ रसवश लसद्दृष्टि वागङ्ग चेष्टौ।
दृष्ट्वाऽन्यादृग् वर विलसितौ साधुयान्ती वहिस्ताः
ताभ्यामात्ताः सहसमवनम्याः सह्रीसौख्यमग्नाः॥

एकान्त लतामन्दिर में श्रीराधाकृष्ण विराजमान हैं, रत्यावेश होने से रसवश उनकी दृष्टि, बोलिन एवं अङ्गचेष्टा अत्यन्त शोभा दे रही है, उनके अति मनोहर विलास का दर्शन कर दूसरी ओर देखती हुईं वे (सखियाँ) बाहर आने लगीं; उनको श्रीयुगलकिशोर ने हँसते-हँसते पकड़ लिया—तब वे लज्जा-युक्त एवं सौख्यरस में मग्न हो सिर झुकाकर खड़ी होगईं।

[५८]

किशोर वयसः स्फुरत् पुरट रोचिषो मोहिनीः
सुचारुकृशमध्यमाः पृथुनितम्ब वक्षोरूहाः।
सुरत्न कनकाञ्चित स्फुरित नासिक मौक्तिकाः
सुवेणीः पटभूषणाः स्मरत राधिका-किङ्करी॥

उनकी (सखियों की) वयस किशोर है, सुन्दर स्वर्ण वर्ण हैं एवं मोहिनी मूर्त्ति हैं; उनका मध्यदेश (कटि) अति सुन्दर एवं कृश है, नितम्ब तथा स्तनयुगल पृथुल हैं, नासिका में रत्न एवं स्वर्ण जटित मुक्तासमूह लटक रहा है, सिर पर

सुन्दर वेणी है एवं (परिधान में) रेशमी वस्त्र धारण कर रही हैं—इस प्रकार से श्रीराधाजी की सखियों को स्मरण कर ।

[५९]

सुरम्या दोर्वल्ली वलयगण केयूर रुचिरा:
क्वणत्काञ्ची मञ्जीरकमनि सुताटङ्क ललिता: ।
लसद्वेणी वक्षोरुह मुकुलहारा वलिरुच:
स्मराऽनन्यप्रेमा: कनकरुचिराधाङ्घ्र्यनुचरी: ॥

जो परम रमणीया हैं एवं भुज लताओं में बाजुबन्द तथा कङ्कणों से सुशोभित हैं, शब्दायमान काञ्ची नूपुर तथा मणिमय कर्णफूलादिकों से सुसज्जित हैं, जो सुन्दर वेणीयुक्त हैं, जिनके स्तन-मुकुल पर हारसमूह प्रतिबिम्बित होरहा है, उन प्रेमशीला-स्वर्ण वर्णा श्रीराधा की दासियों का स्मरण कर ।

[६०]

अहो वृन्दारण्ये सकलपशुपक्षि द्रुमलता-
द्यनन्तं र्लावण्यै र्मधुरमधुरै: काञ्चननिभै: ।
महाप्रेमानन्दोन्मद सुरस निष्पन्दसुभगै:
किशोरं मे सं मोहयदहह सर्वस्व मुदितम् ॥

अहो ! वृन्दावन में समस्त पशु-पक्षी, वृक्ष लतादिकों को अपने स्वर्ण सदृश मधुर से मधुर लावण्यराशि के द्वारा एवं महाप्रेमानन्द में उन्मत्त करनेवाले रसयुक्त अक्षुण्ण सौन्दर्य के द्वारा मोहित करते हुए मेरा सर्वस्व किशोर (श्रीराधा) रूप प्रकट हुआ है ।

[६१]

अहो श्यामं प्रेम प्रसर विकलं गद्गद्गिरा
सरोमाञ्चं सास्रं समनुनयदाली: प्रियतमा: ।

पदं वेण्या बध्वा क्षणमहह संप्रेष्य दयितं
क्वचिद् वृन्दारण्ये जयति मम तज्जीवनमहः ॥

अहो ! किसी समय (प्रबल विरहावस्था में) श्रीमती प्रेमातिशय्य के कारण व्याकुल होकर गद्‌गद् वाणी से पुलकित एवं अश्रुपूर्ण लोचनयुक्त हो अपनी प्रियतम सखियों को अनुनय विनय करके प्रिय श्यामसुन्दर के पास भेजकर थोड़े समय तक (तीव्र असहिष्णुता के कारण) वेणी से अपने चरणों को बान्धती हैं, मेरी वह जीवन स्वरूप श्रीराधा श्रीवृन्दावन में सर्वोत्कर्षयुक्त विराजमान हैं।

[६२]

नवोद्यत् कैशोरं नव नव महाप्रेम विकलं
नवानङ्गक्षोभात्तरलतरलं नव्य ललितम् ।
नवीनाहण्ङ्दृट्योक्तिषु मधुरभङ्गी दधदहो
महो गौरश्यामं स्मरत नवकुञ्जे तदुभयम् ॥

नव किशोर-अवस्था प्राप्त, नव नव महाप्रेम के वशीभूत, नव काम-क्षोभ से अत्यन्त चञ्चल, नव ललित, दृष्टि में, अङ्गों में तथा बोलिन में नवीन मधुर भङ्गी धारण करने वाले, नवीन कुञ्जों में उन गौरश्याम ज्योति श्रीयुगलकिशोर को स्मरण कर।

[६३]

मिथोन्यस्तप्राणं कथमपि नहि स्नान शयनाऽ-
शनादौ विच्छिन्नं गुरुभिरनुरागै र्नवनवैः ।
सदा खेलद्वृन्दावन नव निकुञ्जावलिषु तद्
भजे गौरश्यामं मधुरमधुरं धाम युगलम् ॥

परस्पर न्यस्त-प्राण, स्नान, भोजन एवं शयनादि में भी सर्वदा अविच्छिन्न, नव नव प्रचुर अनुरागवश श्रीवृन्दावन के

नव नव निकुञ्जों में सदा खेलन-परायण उन मधुर मधुर गौरश्यामाकृति श्रीयुगलकिशोर का भजन कर।

[६४]

उत्तुङ्गानङ्गरङ्ग व्यतिकर रुचिराभङ्ग सङ्गीत रङ्गैः
रङ्गैस्तारुण्यभङ्गीभर मधुर चमत्कारि रोचिस्तरङ्गैः।
अत्यन्ताऽन्योन्यासक्ता निमिषमभिलनादार्त्तिमूर्त्तौ भवन्तौ
तौ वृन्दारण्यवीथ्यां भज भरित रसौ दम्पती गौरनीलौ॥

उद्दाम अनङ्ग-रङ्ग-रस के कारण परस्पर मिलन में मनोरम, अविच्छिन्न विविध नृत्य, गीतादि के द्वारा एवं यौवनरस के नानाविध मधुर तथा चमत्कारकारी दीप्ति-लावण्य के द्वारा आपस में अतिशय आसक्ति के कारण निमिष मात्र के विरह से भी आर्त्ति-मूर्त्ति धारण करनेवाले पूर्ण रस-स्वरूप गौरश्याम युगल का श्रीवृन्दावन की गलियों में भजन कर।

[६५]

नश्वर सुत धन जायादिषुहरिमाया मयेषु मा प्रयासम्।
कुरु पुरुषार्थशिरोमणि माचिनु वृन्दावने स्वयं पतितम्॥

नश्वर पुत्र, धन तथा स्त्री आदि श्रीहरि की मायामय वस्तुओं के लिए यत्न न कर, श्रीवृन्दावन में स्वयं पड़े हुए पुरुषार्थ शिरोमणि का चयन (संग्रह) कर।

[६६]

वृन्दावने तरुमूले कूले श्रीमत् कलिन्द-नन्दिन्याः।
भज रति केलि सतृष्णौ राधाकृष्णौ तदेकभावेन॥

श्रीवृन्दाबन में श्रीमत् कालिन्दनन्दिनी (श्रीयमुना) के तीर पर वृक्ष के नीचे रति-केलि तृष्णाशील श्रीराधाकृष्ण का अनन्य भाव से भजन कर।

[६७]

वरमिह वृन्दारण्ये सुवराकी मदनमोहन द्वारि ।
अपि सरमापि रमाप्रियसख्यपि नान्यत्र नो रमापि स्याम् ॥

इस श्रीवृन्दावन में श्रीमदनमोहन के दरवाजे पर तुच्छ कुक्कुरी (कुतिया) होकर भले ही रहूँगा तथापि और जगह लक्ष्मी की प्यारी सखी अथवा स्वयं लक्ष्मी बनकर भी रहने की मुझे इच्छा नहीं है ।

[६८]

प्रत्यङ्गोच्छलदद्भुत नव काञ्चन चन्द्रचन्द्रिका जलधिः ।
नव कैशोर चमत्काररूपा वृन्दाबनेश्वरी स्फुरतु ॥

जिसके प्रति अङ्ग से उज्ज्वल अद्भुत नवीन स्वर्ण चन्द्रिका का सागर उच्छलित हो रहा है, उसी नवीन कैशोर के चमत्कार की हेतुरूपा श्रीवृन्दाबनेश्वरी मेरे हृदय में स्फुरित हों ।

[६९]

कुर्वन्ति सर्वनाशं ध्रुवमति मायामय प्रमदाः ।
तच्छब्दशून्य वृन्दारण्य प्रदेशे बसेत्तत आतुरः ॥

अत्यन्त मायाशीला स्त्रियाँ निश्चय ही सर्वस्व नाश कर देती हैं, अतः चतुर व्यक्ति को इस मायाविस्तारी नारी शब्दशून्य श्रीवृन्दाबन प्रदेश में वास करना उचित है ।

[७०]

उत्तीर्य विष्णुमायामपि वनितायाम विश्वसन् प्राज्ञः ।
तद्भयचकितं सततं निवसति वृन्दाबनेऽति निर्विण्णः ॥

विष्णुमाया से उत्तीर्ण होकर भी बुद्धिमान पुरुष स्त्रियों में विश्वास न करके अत्यन्त वैराग्यवान होकर नारी के भय से चकित-चित्त हुआ निरन्तर श्रीवृन्दावन वास करता है ।

[७१]

परदार-वित्तहारिषु सत्यपदेशे महाप्रहारिषुव ।
नहि वृन्दावनवासिषु दोषं पश्यन्ति चिद्घनेषु धीराः ॥

पर स्त्री एवं धन हरण करने वाले और कपट से महाप्रहार करने वाले, चिद्घनस्वरूप श्रीवृन्दाबनवासियों में धीर पुरुष दोष नहीं देखते हैं ।

[७२]

वृन्दाकानन ! काऽऽनने सुभगता न स्तौति यत्वां सदा
किं तद्देह मपास्य गेहममतां यन्न त्वयि न्यस्यते ।
किं तत् पौरुषमौरसं च तनय विक्रीय न स्थीयते
येन त्वयथ तत्ववित् स खलु को यस्ते तृणं नाश्रयेत् ॥

हे वृन्दाबन ! जो मुख सदा आपकी स्तुति नहीं करता है, उसकी क्या सुन्दरता ? गृह ममता को परित्याग करके जो देह तुम्हारे में पात नहीं करता है, वह देह कैसा ? स्ववीर्य्य पुत्र को भी बेचकर जो वृन्दाबन वास नहीं करता, तो उसका पुरुषार्थ ही कैसा ? वह क्या तत्ववेत्ता कहा जा सकता है, जो कि श्रीवृन्दाबन के तृण का भी आश्रय नहीं ले सकता ?

[७३]

वृन्दारण्यमनन्यभाव रसिकः श्रीराधिका-नागरे
वैदग्धीरससागरे नवनवानङ्गैकखेला करे ।
राधायाः क्षणकोप-कातरतरे तद्भ्रू विलासाङ्कुशाहत
कुष्टात्मेन्द्रिय सर्वगात्र उरुभि विघ्नै रचाल्यः श्रये ॥

जो वैदग्धीरस का समुद्र है एवं नव नव कामरस में क्रीड़ा परायण है, जो श्रीराधा के किञ्चित् कोप से ही अति कातर हो जाता है एवं श्रीराधा के भ्रू विलासरूप अङ्कुश से जिसका

आत्मा, इन्द्रिय तथा सर्व देह आकृष्ट हो जाता है, उसी श्रीराधा-नागर में अनन्य भाव-रसिक होकर एवं अनेक विघ्नों में भी अविचल रहकर मैं इस श्रीवृन्दावन का आश्रय लेता हूं।

[७४]

मदनमोहन वक्त्र सुधाकरे मुदित गोपवधूकुमुदाकरे।
सरसराधिकया परिचुम्बिते मम मनो नवकुञ्ज विलम्बिते॥

नव निकुञ्ज विलासी गोपवधुरूप कुमुदिनी-वृन्द को आनन्दित करने वाले एवं श्रीराधा के द्वारा परिचुम्बित श्रीमनमोहन के मुखचन्द्र में मेरा मन लगा रहे।

[७५]

निलयनाय निकुञ्जकुटीगतां वर सखी नयनेङ्गित सूचिताम्।
सुमिलितां हरिणा स्मरराधिकामनु च तां परिरम्भित-चुम्बिताम्॥

छिपने के लिये निकुञ्जकुटी में जाने पर एवं श्रेष्ठ सखी (ललिता) के नेत्रों के इशारे को पाकर श्रीहरि के सहित सुमिलिता एवं तदनन्तर (श्रीहरि के द्वारा) आलिङ्गता एवं चुम्बिता श्रीराधा को स्मरण कर।

] ७६]

मदनकोटि मनोहर मूर्त्तिनानवलताभवनोदर वर्त्तिना।
प्रियसखीमिष-नन्दित राधिकां स्मर बलाद् रमितां प्रणयाधिकाम्॥

कोटि कामदेव सदृश मनोहर मूर्त्ति, नवलतागृह मध्यवर्त्ती श्रीहरि अत्यन्त प्रणयवती आनन्दपूर्ण श्रीराधा से प्रियसखी के बहाने बलपूर्वक रमण कर रहे हैं—ऐसा स्मरण कर।

[७७]

प्रियतमेन निज प्रिय किङ्करीजन सुवेश-धरेण पदाम्बुजम्।
किमपि लालयता रमितां स्मराम्यनुचरीं क्षिपतीमथ राधिकाम्॥

प्रियतम अपनी प्रिय किङ्करी का सुवेश धारण कर श्रीराधा के पादपद्म को किसी अनिर्वचनीय मधुर भाव से लालित करते करते श्रीराधा को रमण करा रहे हैं—जो अपनी अनुचरीके प्रति तर्ज्जन कर रही हैं, मैं उनका स्मरण करता हूं।

[७८]

एकैकाङ्गन्च्छटाभि र्भरितदशदिगा भोग मत्युन्मदाढ्यं
प्रेमानन्दात्मकाभि र्विद्रुत कनक सूद्भास्वराभिः किशोरम्।
तद्धाम श्यामचन्द्रोर्रसि रसविवशं केलिशिञ्जानभूषं
भ्रस्यद्वासस्त्रुटत्स्रक् स्फुरति रति मदान्निस्त्रपं कुञ्जसीम्नि॥

जिसकी प्रेमानन्दात्मक, उत्तप्त स्वर्ण सदृश, सुन्दर तथा देदीप्यमान प्रत्येक अङ्गच्छटा से दशों दिशाएँ परिपूर्ण हो रही हैं, वही अति उन्मादी, किशोरमूर्त्ति, रसविवश तथा केलिभूषण-शोभित ज्योतिर्मय (श्रीराधा) विग्रह श्यामचन्द्र के वक्षस्थल पर रति-मद-पूर्णता से निर्लज्ज होकर भ्रष्ट वसन और छिन्न-माल होकर निकुञ्ज में शोभा विस्तार कर रहा है।

[७९]

कलिन्द गिरिनन्दिनी तट कदम्बकुञ्जोदरे
दरेण नलिनीभ्रमान्मधुकरादिवा धावतः।
स कृष्ण इति कृष्ण ते शरणमागता स्मीति वाक्-
प्रियासु परिरम्भणादति मुमोद दामोदरः॥

श्रीयमुना के किनारे कदम्बकुञ्ज में नलिनी के भ्रम से दौड़ते हुए भ्रमर के भय से "वह कृष्णवर्ण भ्रमर मेरी ओर आ रहा है; अतएव हे कृष्ण! मैंने तुम्हारी शरण ग्रहण कर ली है"—इस प्रकार वाक्य उच्चारण करने वाली प्रियतमा के सुन्दर आलिङ्गन से दामोदर अति प्रसन्न हुए।

[८०]

श्रीवृन्दाविपिने महा परिमल प्रोत्फुल्ल मल्लीबने
श्रीराधा मुरलीधरा वति रसोल्लासान्मिथः स्पर्शतः ।
आसीनौ कुसुमैः परस्पर वपुर्भूषां विचित्रां मुहुः
कर्वन्तौ रतिकौतुकेन विगमा ल्लब्धाऽनवस्थौ भजे ॥

श्रीवृन्दावन में महा सुगन्ध विस्तार करने वाले खिले हुए मल्लिका बन में श्रीराधा मुरलीधर अति रसोल्लास वश परस्पर स्पर्श कर रहे हैं; वे दोनों कुसुमों के द्वारा बारम्बार एक दूसरे के लिये विचित्र भूषण निर्माण कर रहे हैं; रति कौतुकवश उन के वस्त्र भूषण स्थानभ्रष्ट हो गये हैं, अतः वे अनवस्था को प्राप्त हो रहे हैं—ऐसे श्रीयुगलकिशोर का मैं भजन करता हूँ।

[८१]

श्यामानन्दरसेक सिन्धुर्बुडितां बृन्दावनाधीश्वरीं
तत् स्वानन्दरसाम्बुधौ निरवधौ मग्नञ्च तं श्यामलं ।
तादृक् प्राणपरार्द्ध वल्लभ युमक्रीड़ावलोकोन्मदा-
नन्दैकाब्धिरस भ्रमत्तनु धियो ध्यायामि तास्तत्पराः॥

श्यामानन्द-रससिन्धु में निमज्जिता श्रीराधा का तथा श्रीराधा के असीम आनन्दरस-समुद्र में मग्न उस श्रीश्यामसुन्दर का और कोटि-प्राण से भी अत्यन्त प्रियतम उन श्रीयुगल-किशोर की क्रीड़ा का दर्शन कर, उन्मत्तकारी आनन्दसागर रस में जिनके देह एवं बुद्धि घूर्णित हो रहे हैं—उन्हीं श्रीराधाकृष्ण परायण सखियों का मैं ध्यान करता हूँ।

[८२]

निमिषे निमिषे महाद्भुतां मदनोन्मादकलां वहन्महः ।
द्वयमेव निकुञ्ज मण्डले नव गौरासित नागरं भजे ॥

जो प्रति निमेष में महा अद्भुत मदनोन्माद प्रकाशित कर रहा है, उसी निकुञ्ज मण्डल में स्थित गौर नीलवर्ण ज्योतिर्मय नागर-युगल का मैं भजन करता हूँ।

[८३]

सिञ्चतौ बालवल्लीद्रुमनतिरुचिरं कुत्रचित् पाठयन्तौ
शारीकीरौ क्वचित् क्वापि च शिखिमिथुनं ताण्डवं शिक्षयन्तौ।
पश्यन्तौ क्वाप्य पूर्वागत सदनुचरी दर्शितं सत् कलौघं
तौ श्रीवृन्दावनेशौ मम मनसि सदा खेलतां दिव्यलीलौ॥

जो कहीं अति सुन्दर छोटे छोटे वृक्ष-लताओं में जल सिञ्चन कर रहे हैं और कहीं तोता-मैना को पाठ पढ़ा रहे हैं, कहीं मयूर मयूरी को ताण्डवनृत्य शिक्षा कर रहे हैं तो कहीं नवागत दासी के द्वारा प्रदर्शित सुन्दर सुन्दर कला-विद्या का दर्शन कर रहे हैं; इस प्रकार से दिव्यलीला विनोदी वे श्री-वृन्दावनेश्वर श्रीयुगलकिशोर मेरे मनमें सर्वदा क्रीड़ा करें।

[८४]

नवीन कलिकोद्गतिं कुसुमहास – संशोभिनीं
नव स्तवक मण्डितां नव मरन्दधारां लताम्।
तमालतरु सङ्गतां समवलोक्य वृन्दावने
पतिष्णु मति विह्वलाम धृत काऽपि मे स्वामिनीम्॥

नवीन लता में नवीन कलिका निकल रही है और वह कुसुम विकाश के छलरूप हास्य से संशोभित है, वह नव स्तवक से मण्डित है एवं उस से नव मधुधारा निसृत होरही है—इस प्रकार की लता का तरुण तमाल वृक्ष के साथ मिलन देखकर, अति बिह्वल चित्त होकर मेरी स्वामिनी श्रीवृन्दावन में मूर्छित होकर जब गिरने लगीं तब किसी सखी ने उन्हें धारण कर लिया।

[८५]

शुद्धानन्दरसैक वारिधि महावर्त्तेषु नित्यं भ्रमत्
नित्याश्चर्यवयो विलास सुषमा माधुर्य मुन्मीलयत् ।
अत्यानन्दमदान्मुहः पुलकितं नृत्यत् सखीमण्डले
श्रीवृन्दावन सीम्नि धाम युगलं तद् गौरनीलं भजे ॥

नित्य एकमात्र शुद्धानन्दरस समुद्र के महावर्तों में भ्रमण-कारी, नित्य आश्चर्यमय अवस्था. विलास, शोभा एवं माधुर्यादि को प्रकाशित करने वाले तथा अतिशय आनन्द के आधिक्य के कारण बारम्बार पुलकित अङ्ग होकर सखी समाज में नृत्य करने वाले श्रीवृन्दावन में विराजमान उन गौर-नील वर्ण. विशिष्ट श्रीयुगलकिशोर का मैं भजन करता हूँ ।

[८६]

श्रीराधा पादपद्मच्छवि मधुरतर प्रेम चिज्ज्योति रेका-
म्भोधेरुद्भूत फेनस्तवकमयतनूः सर्व वैदग्ध्य पूर्णाः ।
कैशोर-व्यञ्जिता स्तद्वनतरुणपवन श्रीचमत्कारभाजो
दिव्यालङ्कार वस्त्रा अनुसरत सखे राधिका-किङ्करी स्ताः ॥

हे सखे ! श्रीराधा के पादपद्म की कान्ति द्वारा मधुरतर प्रेम चिद्घनज्योति के एकमात्र समुद्र से उत्पन्न फेन समूहमय जिन के देह हैं, जो सर्व-चतुरतापूर्ण हैं; व्यक्तकिशोर अवस्था एवं तारुण्य छटा के द्वारा जिनके अवयव-समूह परम सुन्दर तथा चमत्कार के पात्र हैं, उन्हीं दिव्यालङ्कारों तथा वस्त्रों से सुशोभित श्रीराधाजी की किङ्करियों का अनुसरण कर ।

[८७]

भृङ्गीगुञ्जरितं पिकीकुलकुहूराव नटत्केकिनां
केका स्ताण्डवितानि चातिललितां कादम्बयूनोर्गतिम् ।

आश्लेषं नववल्लरी क्षितिरुहां त्रस्यत् कुरङ्गेक्षितं
श्रीवृन्दाविपिनेऽनुकुर्वद नुयाह्यात्मैकबन्धुद्वयम् ॥

श्रीवृन्दावन में भ्रमरों की गुञ्जार का, कोयल-समूह के "कुहु-कुहु" मधुर शब्द का, नृत्य परायण मोर समूह की केका-ध्वनि एवं ताण्डव नृत्य का, कलहंस-युगल की सुललित गति का, नवीन नवीन वृक्ष-लताओं के आलिङ्गन का एवं डरे हुए हरिणसमूह की नयन-भङ्गिमा आदि का अनुकरण करने वाले प्राणप्रियतम-युगल का अनुसरण कर।

[८८]

अहो पतितमुत्तरोत्तर विवर्द्धमान भ्रमौ
महारय महोज्ज्वल प्रणयवाहिनी स्रोतसि।
किशोर मिथुनं मिथोऽवश विचित्र कामेहितं
करोत्यहह विस्मय स्थगितमेव वृन्दावनम् ॥

अहो! महावेगवती महा उज्ज्वल प्रणय-नदी के स्रोत में, उत्तरोत्तर क्रमशः वृद्धि प्राप्त आवर्त्त में निपतित श्रीयुगल-किशोर परस्पर विवश होकर विचित्र कामचेष्टाओं का प्रकाश कर रहे हैं; अहह! श्रीवृन्दावन उन्हें विस्मय-विमुग्ध ही कर रहा है।

[८९]

क्व यानं क्व स्थानं किमशनमहो किं नु वसनं
किमुक्तं किं भुक्तं किमिव च गृहीतं न किमपि।
मिथः कामक्रीड़ा रस विवशता मेत्य कलयत्
किशोरद्वन्द्वं तत् परिचरत वृन्दावन वने ॥

कहां यान वाहनादि है और कहां स्थान है; क्या भोजन है. क्या वस्त्र है; और क्या कहा, क्या खाया, क्या ग्रहण किया—इन सब में किसी के प्रति कुछ भी लक्ष्य न रख-

कर परस्पर कामक्रीड़ा रस में ही जो श्रीयुगलकिशोर विवश हो रहे हैं, श्रीवृन्दावन में उन्हीं की परिचर्या कर।

[९०]

केशान् वध्नन्ति भूषां विदधति वसनं वासयन्त्याशयन्ति-
वीणा-वंश्यादि हस्ते निदधति नटनायादराद्वादयन्ते।
वेशार्द्धि च कर्तुं कथमपि नितरामालयः शक्नुवन्ति
श्रीराधाकृष्णयो रुन्मद मदन कलोत्कण्ठयोः कुञ्जवीथ्याम् ॥

सखीवृन्द कुञ्जवीथी उन्मद-कला में उत्कण्ठित श्रीराधा-कृष्ण के केशों को बाँधती है, भूषणों को सजाती हैं, वस्त्र पहिराती हैं, भोजन कराती हैं, वीणा वंशी आदि श्रीहस्त में धारण कराती हैं। नृत्य कराने के अभिप्राय से वाद्य-यन्त्रों में आदर पूर्वक तान छेड़ती हैं एवं किसी भी प्रकार वेशभूषादि की शोभा समृद्धि के लिये अतिशय यत्नवती होती हैं।

[९१]

विद्योतद्वीजराजात्मक विमल महाज्योतिरानन्द सान्द्रे
श्रीवृन्दाकाननेऽत्यद्भुत मधुर महाभाव सर्वस्व मूर्त्तया।
प्रत्यङ्गोत्सर्पि हैमच्छबि रसजलधि श्रीकिशोर्या कयाचित्
कोऽपि श्यामः किशोरोऽद्भुत मधुर रसैकात्ममूर्त्तिश्चकास्ति ॥

विद्योतमान कामबीज स्वरूप विमल महाज्योतिपूर्ण आनन्दघन श्रीवृन्दावन में जो अत्यन्त अद्भुत मधुर महाभाव की सर्वस्वमूर्त्ति है और जिसके प्रति अङ्ग से स्वर्ण कान्ति रस-समुद्र उच्छलित हो रहा है—ऐसी किसी (अनिर्वचनीय) श्रीकिशोरीजी के साथ कोई अद्भुत मधुर-रसैकमूर्त्ति श्रीश्यामकिशोर शोभा पा रहा है।

[९२]

विमल कलित बीज ज्योतिरेकार्णवान्तः
स्फुरति मधुरमेतद्धाम वृन्दावनाख्यम् ।
तदधि निरवधीनाँ माधुरीणां धुरीणा-
वनुसर रतिलोलौ दम्पती गौर नीलौ ॥

विमल सबीज ज्योतिपूर्ण समुद्र-गर्भ में श्रीवृन्दावन नामक यह धाम स्फुरित हो रहा है। उसमें असीम माधुर्य-शाली रति लम्पट गौर-नील कान्ति विशिष्ट दम्पति का अनु-सरण कर।

[९३]

अङ्गादङ्गादनङ्गाकुलित पुलकिताद् गौररोचिस्तरङ्गाः
प्रोत्तुङ्गाः प्रोच्छलन्तः सकलमपि जगन्मण्डलं प्लावयन्ति ।
श्रीराधाया विधायात्मन उरुमधुराभीक्षयै वात्यधीनं
श्यामेन्दुं नित्य वृन्दावन रति-विहृतौ येऽद्भुतां स्तान् स्मरामः ॥

श्रीराधा के अतिमधुर अपाङ्ग विक्षेप (बंक-विलोकन) के द्वारा ही श्यामचन्द्र को अपने अति अधीन करके, उसके (श्रीराधा के) कामातुर पुलकित प्रति अङ्ग से जो गौरकान्ति तरङ्ग-समूह उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हुआ चारों ओर व्याप्त हो कर सम्पूर्ण जगत्-मण्डल को ही प्लावित कर रहा है, उसी नित्य वृन्दावन रति-विहार के अद्भुत (तरङ्गादि) वस्तु-समूह का हम स्मरण करते हैं।

[९४]

वृन्दावन नवकुञ्जे रसपुञ्जे खेलदाश्चर्यम् ।
तद्गौरनील मोहन किशोर मिथुनं स्मराकुलं स्मरत ॥

रसपुञ्ज वृन्दावन के नवीन कुञ्जों में आश्चर्यभाव से खेलन-

शील स्मराकुल उन गौरनील कान्तिविशिष्ट मोहन किशोर युगल को स्मरण कर।

[९५]

श्रीवृन्दावन तत्वं श्रीराधाकृष्णयो स्तत्वम्।
निजतत्वं च सदा स्मर यत् प्रकटितमस्मि गौरचन्द्रेण ॥

श्रीगौरचन्द्र के द्वारा प्रकटित श्रीवृन्दावनतत्त्व, श्रीराधा-कृष्णतत्त्व तथा आत्मतत्त्व सदा सर्वदा स्मरण कर।

[९६]

कृष्णानुराग सागर सारेष्वत्यन्त चमत्कारम्।
विन्दत वृन्दाकानन कुञ्ज कुटीवृन्द वन्दनादेव ॥

श्रीवृन्दावन के कुञ्ज-कुटी समूह की वन्दना मात्र से ही श्रीकृष्णानुराग-सागर का सारभूत अतिचमत्कार प्राप्त कर।

[९७]

*भेदद्वय रहितमस्ति ब्रह्म महानन्द सान्द्रं यत्।
तत् सविशेष चमत्कृति तति रिह वृन्दाबने गता काष्ठाम् ॥

जिसे सजातीय एवं विजातीय भेदरहित महानन्दघन ब्रह्म कहते हैं, वह इस श्रीवृन्दावन में सविशेष चमत्कार-राशि की पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ है।

[९८]

चिच्छक्ति सिन्धु बन्धुरम द्वयमानन्द मद्भुताकारम्।
तद्बिन्दुयुक् चिदात्मक स्मर तत्वं कुञ्जरोक्षितं सरसम्॥

हे चिच्छक्ति समुद्र के विन्दुयुक्त चित्कण (जीव) ! तू चिच्छक्ति सागर के मनोहर और अनुपम अद्भुताकार, सरस

*'भेदत्रय रहितम्' इस पाठ से 'सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेदहीन' जानना चाहिये।

एवं (श्याम) कुञ्जर के द्वारा (प्रेम जल से) सिञ्चित श्रीवृन्दावन-तत्त्व को स्मरण कर।

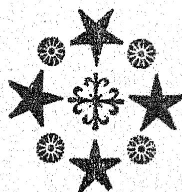
[९९]

अपारावार कन्दर्प नव केलि-रसाम्बुधौ।
मग्नं वृन्दावने गौरश्याम धाम द्वयं भज ॥

श्रीवृन्दावन में पारावार विहीन काम-नव-केलि-रससमुद्र में मग्न गौरश्याम विग्रह युगल का भजन कर।

इति श्रीवृन्दावन-महिमामृते श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती विरचिते
— द्वितीयं शतकम् —

श्रीप्रबोधानन्द-सरस्वती विरचित श्रीवृन्दावन-महिमामृत के द्वितीय शतक का श्रीश्यामदास कृत हिन्दी-अनुवाद समाप्त हुआ।



भावी-प्रकाशन



१—श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

(एकादश से सप्तदश शतक)

मूल एवं हिन्दी अनुवाद सहित ।

२—भक्त-भाव-संग्रह

(द्वितीय संस्करण)

३—श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत (मध्यलीला)

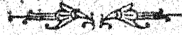
(श्रीकृष्णदास कविराज-गोस्वामी रचित)

मूल, हिन्दी अनुवाद एवं टीका सहित ।



प्रकाशित ग्रन्थ-सूची



१. भक्त-भाव-संग्रह न्यौ० ।=)

२. श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् न्यौ० ॥=)
(१-२, शतक)

३. श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् न्यौ० ॥=)
(३-४, शतक)

४. श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् न्यौ० १॥)
(५-१० शतक)

५. श्रीमद्वैष्णव-सिद्धान्त-रत्न-संग्रह
(श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत-भूमिका) न्यौ० २)

६. श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत (आदि-लीला)
(श्रीकृष्णदास कविराज-गोस्वामी विरचित)
मूल, हिन्दी-अनुवाद एवं टीका सहित न्यौ० ५)

प्राप्तिस्थान :—

श्रीश्यामलाल हकीम
लोई बाजार, श्रीवृन्दावन ।

